

। पुस्तक प्रकाशन में सहायक नामावली ।

रूपये	नाम
५१)	श्रीमती जसकुँवर बाई
४१)	„ प्रभावती बाई
२५)	„ दौलत बाई
१६)	„ मोतियां बाई
१२)	„ दाखां बाई
११)	श्रीयुत रामलालजी लुणिया
१०)	श्रीमती केसर बाई
५)	„ लहर बाई
५)	„ जतन बाई
५)	„ प्रेम बाई
५)	„ रतन बाई
५)	„ हेमजी बाई
४)	„ सोहन बाई
४)	श्रीयुत चिन्तामणजी की माता
४)	„ केसरीमलजी लोढा
२)	„ भँवरमलजी की माता
२)	श्रीमती सूरज बाई
१)	श्रीयुत मांगीलालजी कोठारी

ये ज्ञान भक्ति करने वाले भावुक धन्यवाद के पात्र हैं

(क)

धन्यवाद

प्रस्तुत पुस्तक की जिल्द बंधाई के लिये बीकानेर निवासी
श्रीपुत लूणकरणजी सोनावत की धर्मपत्नी श्रीमती छोटीबाई ने
नवपद ओली तप के उद्यापन में ज्ञानभक्ति के लिये ५०) रुपये
दिये हैं अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं ।

मेमेटरी—

श्रीहरिसागर जैन पुस्तकालय
जाराबास मु० लाहाबट (मारवाड़)



(५)

शुद्धाशुद्धि पत्रक

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	१८	ऐभ्यसं	ऐभ्यसं
७	६	जीतनेवाला	जीतनेवाला
२४	८-९	भाष्यगति भाषसे भषमान करने वाले }	भाष्यगतिक भाषसे भषमान करने वाले }
४०	१	खखलाहट	खंखलाहट
४०	९	महोगगला	महोगगला
४०	१७	"	"
४१	७	दांने दशो	दांने दशो
४३	"	शाग्न हपि	शाग्न हपि
४३	१९	भनस्तग	भनस्तग
४८	१३	प्रशोशनीय	प्रशोशनीय
४८	१६	अग्निपर्णा	अग्निपर्णा
५०	१४	इतिदिमिडिन	इतिदिमिडिन
६४	६-७	'माविदैः'	'माविदैः प्रस्तुत'
७१	१०	सुदृष्टगानम्बिता.	सुदृष्टगानम्बिताः
८३	१९	मे	मेव मे
८६	७	वही	मेव वही
८७	१०	सुनिविज्ञनया	सुनिविज्ञनया
८७	१७	प्रार्थी संद	प्रार्थी गिर
८७	१८	: शुद्धि	: शुद्धि
१०७	६	इष्टगामिध	इष्टगामिध

लेखिका के दो शब्द

निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रश्न और उत्तर रूप में परमात्मस्तव स्तुति रूप मङ्गल करने वाले मध्यात्म्याओं के लिये फल निर्देशात्मक यह ग्रन्थ मिलता है, यथा—

प्र०—थय-थुइमंगलेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—थय-थुइमंगलेणं जीवे नाण-दंसण-चरित्त-पोहिलाभं जणयइ । नाणदंसणचरित्त पोहिलाभं संपप्पेणं जीवे अंतकिरियं—कप्पविमाणोवयत्तिगं आराहणे आरोहइ । (उत्तराध्ययन—२९, अध्ययने) ।

प्र० हे भगवन ! स्तुति करने योग्य परमेश्वर परमात्मा के स्तवन—स्तुति मंगल से जीव क्या पैदा करता है ? । उ०—स्तवन स्तुति मंगल के करने से जीव ज्ञान दर्शन चाग्रि और पोधिलाभ को प्राप्त करता है । ज्ञान-दर्शन-चाग्रि और पोधिलाभ से मरूप यह जीव कर्मों का अन्त कर देता है, अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है, अथवा—रूपान्तर देवलोका की प्राप्ति को सिद्ध करता है ।

इस सूत्रमें भगवान् ने परमात्मा की स्तुति को अध्यात्मिक उन्नति का परम माधन अर्थात् अमाधारण कारण फरमाया है, परमात्मा के गुणानुवाद आत्मीय गुणों के आवरणों को दूर करते हैं। गुणानुवाद भी सांसारिक स्वार्थों को लेकर और परमार्थ को लेकर दो प्रकार से किये जाते हैं। परमात्मा के गुणानुवाद केवल परमार्थ से ही किये जाते हैं। महात्माओं के हृदयोंमें से परमात्म मम्बन्धी जो गुणानुवाद प्रकटते हैं, वे सुननेवालों की ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञानामृत का अमोघ मिंचन करते हैं। महात्माओंकी स्तुतियों के पद पद में क्या ? वर्ण वर्ण में इतनी ताकत रहती है, जो मोड़ हुई आत्मा को सहज में जगा देती है। संसार के त्रिविधताप संतप्त प्राणियों को शान्ति देनेवाली यदि कोई चीज़ है तो—महात्माओंकी की हुई परमेश्वर की स्तुतियाँ ही हैं।

उन्नीसवीं शताब्दीमें होनेवाले परमोपकारी-सुविहित शिरोमणि पृथ्वीवाट प्रानः स्मरणीय महामहोपाध्याय श्री श्री १००८ श्री क्षमा कल्याणकर्त्री महाराज एक अद्वितीय विद्वान् महात्मा थे। आपने संस्कृत-प्राकृत और देशी भाषा में अपनी महा-महिमशालिनी मेधासे आविष्कृत किये हुए कई नये ग्रन्थ रत्न मार्गी मया के महाभण्डार में भेंट किये हैं। उनमें 'त्रैलोक्य प्रकाश को करनेवाली सार्वकलाश 'त्रैलोक्यप्रकाशाख्याजिन-चन्द्रवन्दन चतुर्विंशतिका'—एक अमूल्य रत्न है। वर्तमान

जैन संप्रदाय में—संस्कृत जिन चैत्यचन्दन चौबीसियों में यदि किर्मा को विगिष्ट महत्त्व मिला है, तो इर्मा—चौबीसी को मिला है । इसमें कारण यही है कि संस्कृत जैर्मा विकट भाषा में भी प्रभुके गुणानुवाद पूज्येश्वर महामहोपाध्यायजीने इतनी सरलता से किये हैं, जो पुन विज्ञान के साथ बोलने पर परमानन्द का साक्षात्कार करा देने हैं ।

संस्कृत को नहीं जाननेवाले हिन्दी-भाषा-भाषी इसमें निरूपित परम तन्त्रों का यथोचित लाभ प्राप्त कर सकें । इसके लिये—शक्ति के न होने पर भी रत्नगगन्धाधिपति श्रीमज्जन-हरिभागवतधर्मजी महागुरु माहय की आज्ञानुयायिनी पूज्य वर्यागुरुवर्या-श्रीमती दयाश्रीजी महागुरु माहिषा की सतत प्रेरणा से प्रेरित हो मैंने यह अनुवाद लिखने का प्रयत्न किया है । यह मेरा पहला प्रयास है, कई प्रकाश की छुटियों का होना सम्भव है । दयालु—मज्जन पाठक छुटियों का ग्यारह न करने हुए माग-श्रीजी बनेंगे ऐसी आशा रखती हूँ ।

इस अनुवाद में पूज्येश्वर आचार्य द्वारा दिये गये कवि-यम श्रोकशान्द्र मागर्जी महागुरु माहय न यथासाध्य मदोत्पन्न करने की कृपा की है । अन्त्य में आपकी आभारिणी हूँ । इस पुस्तक के प्रकाशन में गुरुनाथ—अजमेर के बदाल आचार्य सरने जो उत्साह और प्रेम प्रकाशित किया है वह बरि बरि प्रशंसा के पात्र है ।

हिन्दी संगार को यह अनुवाद-समय अपनी अकिंचन भेट समर्पित करती हुई-सुलनाओं के लिये धमा औ नवे माहित्य के नवमर्जन में प्रेरणा को चाहती हैं ।

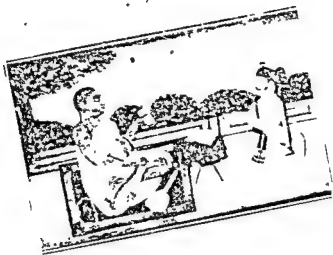
आर्या बुद्धि

लाखन कोटडी (अजमेर)

✽ अहं नमः ✽

महामहोपाध्यायश्रीक्षमाकल्याणकजी का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिका के निर्माता पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय सुगृहीत नामधेय महामहोपाध्याय श्रीमत्क्षमाकल्याणजी महाराज उन्नीसवीं शताब्दी के जैन शासन में तन्मभूत प्रवचन प्रभावक-महाज्ञानी-महासंयमी-गीतार्थशिरोमणि महात्मा थे । सूर्योदय के होने पर उसके प्रकाश से सब कोई लाम उठाने हैं किन्तु अरुणोदय के पहले सूर्य कहाँ था ? क्या था ? इसका ज्ञान प्रायः किसी को नहीं होता । महात्मा रूप से प्रकाशित होने से पूर्व हमारे इन चरित्र नायक के विशिष्ट जीवनचरित्र





इस प्रकार हमारे चरित नायक का जन्म संवत्-जन्मधाम वंश-गोत्र का कुछ परिचय योधपुर निवासी कविराज आशुकवि श्रीनित्यानन्द शास्त्री के-बनाये हुए * श्रीक्षमाकल्याणचरित में से मिलता है ।

॥ गुरु परम्परा ॥

जिनकी शिष्य सन्तति वर्तमान में जैनधर्म की प्रभावना कर रही है, उन अपश्चिमतीर्थंकर भगवान् श्रीमन्महावीरदेव के पांचवें गणधर श्री मुघर्मास्वामी की पट्टपरंपरा में कोटिकण चन्द्रकुल वज्रशाखा और चैत्यवासियों को बाद में सैद्धान्तिक खरतर युक्तियों से जीतने पर खरतर सुविहित संयम की आराधना करने से गुर्जर देशाधिपति श्री दुर्लभराजाधिराज द्वारा वि० सं० १०८० में खरतर विरुद्ध को प्राप्त करनेवाले श्रीवर्द्धमान खरिजी के पट्टशिष्य ४० वें पट्टधर श्रीजिनेधर खरिजी के पाटानुपाट में ६७ वें पट्टधर श्रीजिनभक्तिखरिजी महाराज हुए । आपके मुख्य शिष्य तत्कालीन यति मम्प्रदाय में बढ़ते हुए सिधिलाचार का विरोध करनेवाले सुविहित परम्परा के प्रचारक परम संवेगी-श्रीप्रीतिमागरजी महाराज ६८ वें पट्टधर हुए ।

* लेखक महोदय ने इस चरित का परिचय महामहोपाध्यायजी महाराज के पौत्र खेले भी सुमति मण्डनोपाध्याय प्रसिद्ध नाम भी सुमनजी महाराज ने भोज श्रीकानेर के मण्डारों से यही शोध शोध के बाद आलेखित किया था ।

आपके पट्टशिष्य ६९ वें पट्टधर वाचनाचार्य श्री अमृतधर्मजी
महाराज ही हमारे चरितनायक के आदि प्रतिबोधक गुरु देव थे ।

॥ विद्याभ्यासः ॥

श्री राजसोमाद् विमलेन चेतसो—

पाध्यायतांऽसौ पठितुं प्रचक्रमे ।

नित्यं पठन् ससदशोन्मिते वर्षा,

श्रीमान् सतीर्थः किलसंयमेरिव ॥ १४ ॥

स्वतरगच्छ की श्री हेमकीर्ति शास्त्रा में १८ वीं शताब्दी में
उपा० श्रीलक्ष्मीवल्लभजी हुए उनके गुरु भ्राता वाच० गोमहर्षजी के
शिष्य वाच० लक्ष्मीमनुद्रके शिष्य उपा० कर्पूरप्रियजी के शिष्य प्रौढ
विद्वान् महामहोपाध्याय श्रीगजमोम जी महाराज के पास हमारे
चरित नायकने निर्मल चित्तसे विनयपूर्वक सतरह प्रकार के
संयम भेदों के जैसे सतरह महाध्यायियों के साथ लक्षण-न्याय-
आगम आदिकों का पढ़ने हुए अद्वितीय विद्वत्ता प्राप्त की थी ।
महामहो० श्रीगज मोमजी के जैसे उर्मा शास्त्रा के संस्कृत प्राकृत
और गजस्थानी आदि भाषाओं के विशिष्ट कवि मर्मज्ञ त्रिगोमणि
उपा० रामविजयजी प्रसिद्ध नाम श्री रूपचन्द्रजी से भी आपने अच्छी
योग्यता हासिल की थी ।

❁ बुद्धि वैभव ❁

× किसी समय में श्रीराजसोमजी के पास अपने सतरह सहपाठियों के साथ हमारे चरित नायक पढ़ रहे थे । उस समय काशी का एक विद्वान् वहां आया, और किसी उत्तम शास्त्र की चर्चा से सब छात्रों को परास्त कर दिये । उस समय कोई आकाश की ओर देखने लगा, कोई अध्यापक के मुंहको ताकने लगा, तो कोई भूमीको कुरेदने लगा, और कोई अपनी पुस्तक को देखने लगा, उस समय निर्भयमिह के जैसे संस्कृत भाषा में गर्जना करते हुए अपनी अकाट्य युक्तियों से उद्दण्ड हार्थी के जैसे उस पाण्डित को बड़ी खुबी के साथ हमारे चरित नायक ने जीत लिया । हमारे चरित नायक अपने समय में अद्वितीय विद्वान् माने जाते थे ।

॥ नव साहित्य सर्जक ॥

हमारे चरित नायक व्याकरण-न्याय-काव्य-साहित्य आदि में सर्वोपरि थे इतना ही नहीं बल्कि जनागमों के गूढ़

× छात्रेषु सर्वेषु पठन्तु जातुचिद्-धाराणसेयाधिबुधःसमायया ।
छात्राः समं मङ्गलपराहमुर्धाकृताग्नेनकंकमोक्षम शास्त्रचर्चया ॥५॥
छात्रेषु केव्यप्यलोकयन्मुन-मन्येषु पश्यन्तु च पाठकाननम् ।
भूमि नम्राप्रार्थितिन्युकेषुचिद् उप्पुं तथेवछन्म्यपंगुपुष्पकम् ॥६॥
निर्भयण मिह इवांन्मुख शमा-कल्याणकः संस्कृत गजिनं दधम् ।
उद्दण्डगुणहार मिथानु पाण्डित-मन्यगिविजिग्य इत्यमालितोकमुक्तिभि

मन्त्रों को ब्रह्म करने के लिये भी असाधारण गीतार्थ थे । अनेकों विद्वान् यथने प्रशंसा या मन्देरी का शयानान् आकरने करते थे । मन्त्रनायक आचार्य भी आपकी गीतान्त्रिक सम्मतिसे बहुत मन्त्र समझते थे । अन्य मन्त्रोंके और मन्त्रान्तर्गत कई यन्त्रियों ने आपके पास दियाप्रयत्न कर पाणिन्य ग्राम किया था—अपना मन्त्रीय र्थापन्नविजयजीपदागज अपनी कृतियों में—' त्रिनु-
तलय-ब्रह्मनायक द्विने पद्मविजय गुणगायत्री '—इत्यादि में दियागुण के नाते स्मरण करते हैं । प्रभोनागार्द्धप्रतक के अतिरिक्त आपके लिखित गंकरों छूटकर प्रभों के उन्नत पीकाने के परिणामानि अन्य भण्डार आदि में विद्यमान हैं । कई प्रभ तो अपने अतिरिक्त और विद्यागर्णीय होने हैं कि उनके सम्मुख उन्नत देनेवाले बहुत कम मिलेंगे ।

॥ आपके रचित ग्रन्थों की सूचि ॥

- | | |
|--------------------------------|------------------------------|
| १-गुप्तानु कृति | ७-गुप्त. स्थावरी कृति: |
| २-गौतमीय काण्व कृति | ८- प्रभोनाग मार्द्धप्रतक |
| ३-शान्तुमारिक. व्याख्यानम् | (भाषा में और सम्स्कृत में) |
| ४-शान्त. मन्त्र. बृहन्पट्टावली | ९- जीवविचार कृति |
| ५-शिवर. साधु विधिप्रकाश | १०-शिव स्तवावली |
| ६-शिवना. नापट | ११-शिवर. चरित्रम् |

१२-तर्क संग्रहफनिका

१३-चैत्यचन्दन चौविर्मा

(३-संस्कृत में १-भाषा में)

१४-विज्ञान चन्द्रिका

१५-अष्टाद्विका व्या०

१६-मेरुत्रयोदशी व्या०

१७-अक्षयतृतीया व्या०

१८-होलिका व्या०

१९-प्राकृत श्रीपालचरित्र धृतिः

२०-समगादित्य चरित्र अपूर्ण

२१-प्रतिक्रमणहेतवः

२४-विचार शतक बीजक

२२-श्राद्धप्रायश्चित्तविधिः

२५-जयतिहुअण भाषा

२३-परसमय विचारमार संग्रह

२६-हितशिक्षाडात्रिंशिका

भुवनभानु केवली चरित्र आदि और भी आपके विरचित ग्रन्थ सुने जाते हैं । आपके भक्त हृदय से गंगाप्रवाह के जैसे पवित्र भावों से पूर्ण धारावाही प्रभु भक्ति के जो स्तवन प्रकाशित हुए हैं, उनमें भक्तात्माओं के आनन्द की मामग्री तो अस्मूट मिलती ही है, साथ ही उम जमाने की ऐतिहासिक मामग्री भी प्रचुर मात्रा में मिलती है । आपके ऐतिहासिक स्तवनों में संघवी राजाराम गिडिया और संघवी तिलोकचंद लुणिया के संघका विस्तृत वर्णन जानने को मिलता है । मुर्शिदाबाद की महाजन-

का वर्णन मिलता है, जोकि आज नाम शेष हो चुकी है ।
मजनों से आपके विहार क्षेत्र की पर्यादा का पता भी
है—बंगाल-विहार-पू.-पी.-पंजाब गिन्ध-कच्छ-वाटियावाड़-
गल-भानवाड़-राजपूताना आदि में आपने विहार करके जैन-
का सुन्दर प्रचार किया था ।

॥ निधिलाचार का प्रतिरोध ॥

हमारे चरितनायक ने अपने दादागुरु श्रीप्रीतिधर्मजी
महागज और गुरुदेव श्रीप्रमृतधर्मजी महागज के साथ भीमिदा
चलतीपाँधिगज पर वि० सं० १८३८ माघ शु० ५ को परि-
प्रदका सर्वथा न्याग करके यति सम्प्रदाय में बढने हुए निधिला-
चार का और प्रभु पूजाविरोधी दृष्टक मतके प्रचार का प्रतिरोध
किया था । जैसे गणगण्ड में मन्यविजयजी पन्याग ने क्रियोद्धार
किया था, वैसे ही रातगण्ड में आपने सुविहित संयम मार्ग
में प्रस्थान किया था । आप जैसे बहुधुन थे, वैसे ही परम
संयमी भी ।

॥ प्रयत्न प्रभावना ॥

हमारे चरित नायक के संयम और योगबल से आका-
रुई सम्प्रदायी देवी मिट गई । महाप्रभावशाली ऋषिमण्ड
१ स्वप्नभरी वसुधासज्जावलीया विजय भासांन सुतरा महातप
कल्पदृ कल्पोऽयमकल्पनरूपधी लांबरत कल्पितकाम ३
नाम ॥ - ० ॥

शोध की जाने लगी थी । तब बहूत शोधमय शोधों
में अन्तर्निहित एक ही बातें पता चली । आगे के शोधों में जेन
में के मर्यादा-धीमाव रती पर आगे दृष्टि परमस्वरूप विभिन्न मर्यादा
५१ में परिणत होगी थी २ । जोधपुर के मर्यादा मानसिद्धी
ने आगे के गुणगौरव में आकर होकर अपना राज्यपरिणत
राजकी सेवा में जाता था ३ । मर्यादा मानसिद्धी ने अपनी
एक गुणक की दीक्षा आगे लिखा है थी और बहूत कठिन
विज्ञान-विद्वत्ता बुद्धि की थी २ । इन प्रकार जेनलमें के मर्यादा
मानसिद्धी, जोधपुर के मर्यादा मानसिद्धी, बीकानेर के मर्यादा
गुणसिद्धी आदि आगे के उन्मुख ज्ञान संभव और योग्यत्वियों
में जेन ज्ञान के अनुगामी-वर्ग में हो गये थे ।

१-मो. शास्त्र-शास्त्र-धीनिधेयमा दयाल कल्याण विद्वाननुभवमा ।
कर्म पुस्तकानु-परित-पर-पुत्र, दया विनिर्देशगति-प्रवर्तने ॥ ५०

× × ×

× × ×

× × ×

धर्मोत्तम याच कार्याना महात्मना, राजा तथेय प्रमदादनुष्ठितम् ।
प्रादुर्द्वयच्छत्रुबल तदर्थतम्, तन्मथानुमुष्मिप्रव्रनानाशिधियम् ॥ ५१
- आधायपूर्व गुण-धमुत्तम, धीमानसिद्धाश्लिषि क्षिप्तोभ्यत् ।
सामाद मेतन्मुमना-निरकाधय, स्य पण्डित निन्नामिध स्यम
जयम् ॥ ६० ॥

२- धीमानसिद्धा नृपतिमुने गांधा, समर्थयत्पुस्तकमेकमुद्धरम् ।
माटीकि तन्मेष्य च सूरिणामुना विद्या समाप्यानुजु वाप्युजु
भवेत् ॥ ६१ ॥

(१७)

स्वर्गवास

हमारे चरित नायक को वृद्धावस्था के कारण शारीरिक अवस्था का अनुभव होने लगा था, तब आप बीकानेर पधार गये थे। बीकानेर और घुटनों में घादी के दर्द आदि के रहने पर भी आप अपनी संपन्न क्रिया में तत्पर रहते हुए साहित्य सेवा करते रहते थे। ममराइयकहा की संस्कृत टीका आपने इसी अवस्था में प्रारम्भ की थी, किन्तु आयुष्य की निकटता के कारण से स्थिति पंडित प्रवर श्रीगुणतिवर्द्धन जी को इस टीका को पूर्ण करने की आज्ञा दी थी। शारीरिक अमाता के रहते हुए भी संपन्न की माता को घेदते हुए सं० १८७३ वीस क० १४ मंगलवार के दिन बीकानेरमें आपका आत्मस्वरूप में रमण करते हुए स्वर्गवास हुआ था।

७ शिष्य परम्परा ७

हमारे चरित नायक के कई विद्वान् शिष्य थे उनमें कल्याण विजयजी और विवेक विजय जी मुख्य थे परंतु दोनों अन्यकाल में स्वर्गगामी होगये थे उन दोनों के नाम से ज्ञानानन्दजी और गुणानन्दजी नाम के दो शिष्य थे। ज्ञानानन्दजी के मयाचन्द्रजी और गुणानन्दजी के मोतीचन्द्रजी ये शिष्य प्रशिष्य 'जति' अवस्था में ही रहे थे। इन के जति शिष्य बीरानेर में अभी भी मौजूद हैं। परिग्रह का सर्वथा त्याग कर संन्यास पक्ष

साधुमार्ग स्वीकार करने पर आप के पट्ट शिष्य ७१ वें पट्टधर महात्मा श्रीधर्मानन्दजी महाराज थे, उनके पट्ट शिष्य ७२ वें पट्टधर संयमि श्रेष्ठ उ० श्रीराजसागरजी महाराज थे आपके श्रीमक्ति विनयजी और कविवर उ० श्रीसुमति मण्डनजी (श्रीसुगनजी) दो गुरुमाई थे । उ० श्रीराजसागर जी महाराज के पट्टशिष्य ७३ वें पट्टधर महाप्रभावक-आबूमहातीर्थ की रक्षा करने वाले महामहो० श्रीऋद्विसागरजी महाराज हुए । आपके पट्टशिष्य ७४ वें पट्टधर सुविहित शिरोमणि पूज्येश्वर गणाधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहब हुए । आपकी त्याग-तप-ज्ञान-संयममें विशिष्टता होने से आप ही के-नाम से खरतर गच्छ के करीब पाँच दोसौ साधु-साध्वियों का समुदाय इस समय-राजपूताना-गुजरात-काठियावाड़-यू. पी. बंगाल-बिहार-मालवा-मेवाड़-मारवाड़ आदि प्रदेशों में प्रख्यात है । आपके पट्टशिष्य ७५ वें पट्टधर गणाधीश्वर श्रीमान् भगवान् सागरजी महाराज साहब हुए आपके ७६ वें पट्टधर पूज्येश्वर गुरुदेव जैनाचार्य श्रीमज्जिन हरिसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब अपने धर्मराज्य को चलाते हुए जयवंत बर्तमान हैं ।

उपसंहार

इस प्रकार प्रस्तुत चैत्यचन्दन चतुर्विंशति का केरचपिता हमारे चरित नायक पूज्येश्वर महामहोपाध्याय श्रीमन् क्षमा-

कल्याणजी महाराज की दिव्य और आदर्श संश्लिष्ट जीवनी
 यहाँ आलेखित की है। महापुरुषों के आदर्श जीवन की दिव्य
 ज्योतिषों तिमिराच्छन्न हृदयवाले साधारण मनुष्यों को-आत्म्य
 मार्ग के पथिकों को मार्ग दर्शक होती हैं। मार्ग दर्शी मनुष्य
 परमात्मा को उसी तरह से प्राप्त कर लेता है जैसे धूप के
 प्रकाश में मनुष्य अपने सामने रखी हुई वस्तु को। हमारे
 चरितनायक की दिव्य ज्योति हमारे लिये हमेशा मार्ग प्रदर्शक
 बनी रहे यही एक प्रार्थना है। आपकी बनाई हुई दिव्य चैत्य-
 चन्दन चतुर्विंशतिका का अनुवाद करते हुए आपके भावों में
 किमी प्रकार की क्षति पहुँची हो तो क्षमा प्रार्थना करता हूँ
 और याचना करता हूँ कि हे पूज्येश्वर ! आप अपने जैसी दिव्य
 शक्ति मुझे भी प्रदान करें। इति शं ।

गुरुपदभूषा-

बुद्धिध्री



❀ जाहिर खबर ❀

श्री जैन संघ को विनती करने में आती है कि महाराष्ट्रपति जी श्री सुमनिसागर जी महागज के मद्दुपदेश में कोट छवडा आदि के संघ की द्रव्य महायत्ना में हिन्दी भाषा में ज्ञान छपाने के लिये यहां "जैन प्रेम" मोला है। इस प्रेम में अन्धी, गुन्धर, मम्ती छपाई होती है और उसकी बचन ग्रन्थ प्रचार आदि शुभ कार्य में खर्च की जाती है अतः अपनी छपाई का कार्य इस प्रेम में अवश्य भेजें।

कल्पसूत्र बहिया कागज और बड़े अक्षर होने पर भी अल्प मूल्य २), दर्शककालिक मूल भावार्थ सहित १), पर्वकथा संग्रह साधु-श्रावक आराधना सहित मरल संस्कृत १), विषाक सूत्र मूल, अर्थ, टीका, टिप्पणी और ग्रामांगिक उपदेश सहित २), अंतगडदशा तथा अनुत्तरोचवाई ये दोनों सूत्र मूल अर्थ सहित साधु-साध्वी-ज्ञानभंडार-लायब्रेरी और श्री संघ को अमूल्य भेंट दिये जाते हैं। और उचवाई, उपासक दशा, उत्तराध्ययन, ज्ञाताजी आदि छपरहे हैं। रायप्रज्ञेनीय, प्रश्नव्याकरण आदि छपने वाले हैं।

श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय,
जैन प्रेस कोटा.

ॐ नमः ॐ

श्रीमत्सुखसागर भगवद् हरिपूज्यसद्गुरुभ्यो नमो नमः



सुविदितशिरोमणि-प्रवचनप्रभावक-सर्वतन्त्र स्वतन्त्र-अपूर्वग्रन्थरत्न-
रत्नाकर गुणगुरुगुरुधीमदमृतधर्मपट्टप्रभाकर-सुगृहीत-नामधेय

श्रीध्री १००८ श्रीमहामहोपाध्याय श्रीमत्क्षमाकन्याण-
पूज्यपादः प्रस्तुता 'त्रैलोक्यप्रकाशाख्या'—

श्रीजिनचैत्यवन्दन चतुर्विंशतिका ।



॥ अनुवादिका-कृत-मङ्गलादि ॥

(भवुष्टुव वृत्तम्)

१

सद्विवेक-दया-शुद्धि-श्रीमूर्त्तात्मा मगस्वती ।
गुरु-नीर्थाधिनाथानां, मदा जीवात्मरम्बती ॥

२

श्रीत्रैलोक्यप्रकाशाख्या, नैक-वृत्त-मनोहरा ।
चतुर्विंशतिका चैत्य—वन्दनानां लग्न्यदा ॥

३

निर्मिता पूज्यपूज्यैर्षा, मया गान्धर्वतेज्जुना ।
गुरुणां ददया हिन्दी-भाषायां बांधगुदये ॥



॥ श्रीऋषभजिनचैत्यवन्दनम् ॥

* शार्दूलविक्रीडितं पृथम् *

सद्भक्त्या नत-मौलि-निर्जरवर-भ्राजिष्णु-मौलि प्रभा-
संमिश्रारुण-दीप्ति-शोभि-चरणाम्भोज-द्वयः सर्वदा ।
सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः सुचरितो धर्मार्थिनां प्राणिनां,
भूयाद् भूरि-विभूतये मुनिपतिः श्रीनाभिसूनुर्जिनः ॥१॥

अनुवाद—‘सद्भक्त्या’—मची भक्ति से ‘नतमौलिनिर्जरवरभ्राजिष्णुमौलिप्रभासंमिश्रारुणदीप्तिशोभिचरणाम्भोजद्वयः’—नतमस्तक इन्द्रों के देदीप्यमान मुकुटों की प्रभाके संमिश्रण-वाली लालिमापूर्ण कान्तिसे सुशोभित चरण कमल युगल हैं जिनके ऐंसे, ‘सर्वज्ञः’—लोक और अलोक में होनेवाले समस्त भावों को केवल ज्ञान से सर्वतो भावेन यथार्थ रूपसे जाननेवाले, ‘पुरुषोत्तमः’—पुरुषोंमें प्रधान, ‘सुचरितः’—आदर्श और पवित्र जीवनवाले, ‘मुनिपतिः’—साधुओं के स्वामी, ‘श्रीनाभिसूनुः’—युगलियों के अधिपति श्रीनाभिकुलगर के पुत्र, ‘जिनः’ राग-द्वेष रूप अन्तरङ्ग दुश्मनों को जितनेवाले श्रीऋषभ-देवस्वामी ‘धर्मार्थिनां’ धर्म के अर्थां मृगशु ‘प्राणिनां’ मव्यात्माओं को ‘भूरिविभूतये’—ज्ञान दर्शन चाग्रि और वीर्य के अनन्त ऐश्वर्य के लिये ‘भूयाद्’—हैं ।

तद्वयोधोपचिताः सदैव दधता प्रौढप्रतापश्रियो,

+

+

व्यञ्जित की है । क्योंकि सूर्य दिन में ही तथोक्त गुणों को धारण करता है, और रात्री में अस्त हो जाता है । परंतु भगवान् तथोक्त गुणों को सदैव निरंतर धारण करते हैं । इससे उपमा के साथ व्यतिरेकालंकार भी भासित होता है ।

यो विज्ञानमयो जगत्त्रयगुरुर्यं सर्वलोकाः श्रिताः,
सिद्धिर्येन वृता समस्तजनता यस्मै नतिं तन्वते ।
यस्मान्मोहमातिर्गता मतिभृतां यस्यैव सेव्यं वचो,
यस्मिन्निश्चयगुणास्तमेव सुतरां वन्दे युगादीश्वरम् ॥३॥

अनुवाद—‘यो विज्ञानमयो जगत्त्रयगुरुः’—जो विज्ञान में पूर्ण थे, जन्म में ही मतिज्ञान, धृतज्ञान और अवधिज्ञान को धारण करने वाले थे । जो ज्ञान के द्वारा ही तत्कालीन यौगलिक मावोंको मिटाकर अग्नि, मग्नि और कृषि कर्म के व्यवहार को चलाने वाले हुए थे । इमीलिये जो स्वर्ग मर्त्य और पाताल रूप तीनों जगत् के गुरु थे । ‘यं सर्वे लोकाः श्रिताः’—अपने अज्ञान जनित दुःखों को मिटाने के लिये लोकों ने ‘विनये’ अपना आश्रय बनाया था । ‘सिद्धिर्येन वृता’—दीक्षा लेकर ‘विनये’ शत्रुर्ध्व मनःपर्यंत ज्ञानरूप सिद्धि का प्राप्त की थी । ‘समस्तजनता यस्मै नतिं तन्वते’—समस्त जनसमूह अपने ‘विनये के लिये’ प्रगति वंदना की थी । ‘यस्मान्मोहमातिर्गता’ गुणध्यानक करने हुए श्रीगोह नामक गुणध्यानक में विनये मोहवृद्धि सर्वदा नष्ट हो गई थी । ‘मतिभृतां

स्यैव सेव्यं वचः'—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और
अन्तरायकर्म रूप पाती कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर, तेरहवें
योगिकेवली नामक गुणस्थानक में केवलज्ञान और केवलदर्शन
के जरिये, तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से समवसरण में होता हुआ
जैनका पैंतीस गुणों से युक्त उपदेश वचन ही बुद्धिमानों को सुनने
और मेवने करने योग्य था, और है भी। 'यस्मिन्निश्वगुणाः' चौदहवें
योगिकेवली नामक गुणस्थानक में शैलेशी करण से योगानिरोध
करके पूर्वके चार पातीकर्म और बाकी के चेदनीय-आयु-नाम और
गोत्रकर्म रूप चार अधानी—ऐसे संसार के कारण भूत आठ कर्मों
को सर्वथा क्षय करके सिद्धशिला पे जाकर सिद्ध होने पर 'जिनमें'
आत्माके समस्त गुण प्रकटे 'तमेव युगादीश्वरं'—उन युगकी
आदि में होनेवाले पहले तीर्थंकर श्रीऋषभदेव भगवान् को 'सुतरां
बन्दे'—मैं विधि पूर्वक वन्दन करता हूँ।

इम काव्य में पूज्य स्तुति कर्ता महोदयने व्याकरण प्रसिद्ध
यत्' शब्द की मातों विभक्तिषो ['यः-यं-येन-यस्मै-यस्मात्-यस्य-
यस्मिन्']—का प्रयोग बड़े अच्छे ढंग से किया है।

भावार्थ.—महर्षि, पुरुषोत्तम, अच्छे चरित्रवाले, और
व्यक्ति में नमस्कार करने हुए देवेन्द्रों के देदीप्यमान मुकुटों की
प्रभा में मुन्नोभित चरण कमल को धारण करनेवाले श्रीनाभिराजा
के पुत्र मुनिपति श्रीऋषभदेवस्वामी धर्मार्षि प्राणियों का बड़े भारी
रक्षण के लिये हों ॥ १ ॥

जिनने सद्बोध से पुष्ट ऐसी प्रताप लक्ष्मी को धारण करते हुए, एक क्षणमात्र में अज्ञानरूप अन्धकार के विस्तार को विशेष करके नष्ट कर दिया है, और जिनने श्रीशुभ्रयतीर्थाधिराज के परेले शिखरको सूर्य के जैसे उद्भासित करते हुए भव्यजीनों का हित किया है, वे भीमरुदेवी माता के पुत्र श्रीऋषभदेवस्वामी हमेशा जयवन्तें बचें ॥ २ ॥

जो विज्ञानमय, और तीनलोक के गुरु हैं। जिनको सब लोगोंने अपना आश्रय बनाया है। जिनने सिद्धि का प्राप्त की है। जिनके लिये जनता वंदन करती है। जिन में मोहपुद्धि गर्वधा बली गई है। जिनका वचन ही बुद्धिमानों के मेष्य है। जिनमें समस्त गुण रहे हुए हैं। उन श्रीपुगादीधर-श्रीऋषभदेवस्वामी को मैं बाग्वार वंदन करता हूँ ॥ ३ ॥

श्री अजितनाथ जिन चैत्यवन्दनम्

(मालिनी-छन्दः)

सकल-मुख-समृद्धिर्यस्य पादारविन्दे,

विलसति गुणरक्ता भक्तराजीयनिरयम् ।

त्रिभुवन-जन-मान्यः शान्तमुद्राभिरामः

सजयतु जिनराजस्तुङ्ग-तारङ्गक्षीर्षे ॥ १ ॥

अनुवादः— ' यस्य '—जिनके ' पादारविन्दे '—पाद

' गुणरक्ता '—गुणानुगामी ' भक्तराजीय '—भक्तों की

निजबल-जितराग—द्वेष—विद्वेषिवर्ग,
तमजितवरगोत्रं तीर्थनाथं नमामि ॥ २ ॥

अनुवादः—‘यस्य’-जिनके ‘निर्वर्णनेन’-स्तुति आ
के द्वारा गुणोत्कीर्तन करने में ‘किल’-निश्चय करके ‘भव्यः’
मोक्षाभिलाषी-भव्य जीव ‘व्यपगतदुरितौघः’-नष्ट होगा
है पापों का समूह जिसके ऐसा-निष्पाप और ‘प्राप्तमोदप्रपंचः’
प्राप्त किया है परमानन्द का विस्तार जिसने ऐसा-परमसुखी-होता हुआ
‘प्रभवति’-परमात्मदशा की प्राप्तिरूप प्रभुत्व को पाता है
‘निजबलजितराग-द्वेष-विद्वेषिवर्ग’-जितने अपने ही परा
क्रमसे-उग्रतपोबल से राग और द्वेषरूप अन्तरंग दुश्मनों के समू
ह को जीत लिया है। ‘अजित-वरगोत्रं’-जो किसीसे भी ना
हारनेवाले अजित और श्रेष्ठ वंश को धारण करने वाले हैं। ‘तीर्थ
नाथं’-जो प्रवचनरूप-प्रथम गणधरकी स्थापना रूप अथवा सा
माज्यी-धावक और धाविका ऐसे चतुर्विधसंघकी-स्थापना रूप तीर्थ
के स्वामी हैं। ‘तं’-उन श्रीअजितनाथ स्वामी को ‘नमामि’-
मैं वन्दना करता हूँ।

नरपति—जितशत्रो वंश—रत्नाकरेन्दुः
सुरपति—यतिमुख्यैर्भक्तिदक्षैः समर्च्यः ।
दिनपतिरिव लोकेऽपास्तमोहान्धकारो
जिनपतिरजितेशः पातु मां पुण्यमूर्तिः ॥ ३ ॥

अनुवादः— 'नरपतिजिनशत्रोर्धेशरत्नाकरेन्दुः'—
अयोध्या के अधिपति धीजितशत्रु महाराजा के वंशरूप समुद्र की
समृद्धि को बढ़ाने में चन्द्रमा के समान, [जैसे २ चन्द्र की कलाएँ
बढ़ती हैं, वैसे २ समुद्र का जल भी बढ़ता है । यह पान लोकप्रसिद्ध ही
है] 'भक्तिदक्षैः'—भक्ति करने में चतुर ऐसे 'सुरपति-यतिमु-
क्षयैः'—देवेन्द्रों में और महर्षि-योगियों में 'समर्प्यः'—भली प्रकार
पूजनीय-चंदनीय और स्मरणीय, 'लोके'—लोकमें 'दिनपतिः'
हय'—सूर्यके जैसे 'अपास्त-मोहान्धकारः'—दूर कर दिया है
अज्ञानरूप अन्धकार को जिनने ऐसे, 'गुण्यमूर्तिः'—काम क्रोध
आदि से रहित परमशान्त ऐसी पवित्र मूर्ति को धारण करने वाले,
'जिनपतिः'—तीर्थंकर नाम कर्म के कारण आठमहाप्रतिहार्य आदि
अतिशय विशेषों को धारण करने वाले होने में सामान्य केवलियों के
स्वामी 'अजिनेशः'—'श्रीअजिननाथ' इस यथार्थ नाम को धारण
क करने वाले दूसरे भगवान्, 'मां पानु'—मेरी रक्षा करो ॥ ३ ॥

भाषार्थः—गुणानुगमी भक्तों की धेष्णि के समान अनन्त
अव्याबाध सुखों की समृद्धि जिनके चरण कमलों में हमेशा क्रीड़ा
करती है । जो तीन लोक के माननीय है । जो ज्ञान मुद्रा में विरा-
जित है, और जो सामान्य केवलियों के स्वामी है । वे श्री नारदा
तीर्थ के नायक श्री अजिननाथस्वामी महा जगन्नेश्वर—जगत्पति
मोहजित गुलामी का मिटानेवाले हैं ॥ ४ ॥

जिनके गुणों का भजन करने में मोक्षानिर्वाण स्वयं

भारतभूमि में मुक्त हो कर, और परमानन्द को पाकर, निषण्ण का
परमात्मरक्षा रूप प्रभुत्वको प्राप्त करते हैं । जिनने अपने ही एक
कर्म में राग और द्वेषरूप आत्मा के दुश्मनमण्डप को जीत लिया
है । दुश्मनों को अजेय ऐसे दृष्टादृष्ट में जन्म लेने वाले, उन तांता-
नीधों के अधिपति श्रीअजितनाथस्वामी को मैं वन्दन करता हूँ ॥ २ ॥

नमोऽपि श्रीजितशत्रु महाराजा के वंशरूप गम्भीर की सृष्टि
को बसाने में अन्द्रमा के समान, भक्ति में शत्रु जैसे दोस्ती के
श्रेष्ठ योगिन्द्रों के पूजनीय-वन्दनीय और समर्पणीय, एवं के श्रेष्ठ
श्रेष्ठ में मोक्षरूप अन्धकार को दूर करने वाले, परित्र-निर्दोष पूर्ण
पावन करने वाले, विजिताश्रों के स्वामी ऐसे श्री अजितनाथ को
मेरी स्था कर्म । ॥ ३ ॥

श्री सम्भवनाथ जिन चैत्यवन्दनम्

(गायत्री छन्दः)

सर्वत्र-व्याप्त-कारिणा प्रचुरतार-भय भ्रान्तिमुक्ता मनुष्य
स-प्र-सा-द-ना-नु-भा-वा-द-वा-स-न-ज-गु-ण-ान्य-वि-पा-द-म-प-रा-
स-प्र-सा-द-ना-नु-भा-वा-द-वा-स-न-ज-गु-ण-ान्य-वि-पा-द-म-प-रा-
स-प्र-सा-द-ना-नु-भा-वा-द-वा-स-न-ज-गु-ण-ान्य-वि-पा-द-म-प-रा-
स-प्र-सा-द-ना-नु-भा-वा-द-वा-स-न-ज-गु-ण-ान्य-वि-पा-द-म-प-रा-

सर्वत्र-व्याप्त-कारिणा प्रचुरतार-भय भ्रान्तिमुक्ता मनुष्य

सर्वत्र-व्याप्त-कारिणा प्रचुरतार-भय भ्रान्तिमुक्ता मनुष्य

अनुत्तर-भयभ्रांति मुक्ताः :- अनन्त संसार के परिहार में-
 क-विषय मनुष्य अंत देवमर सम्बन्धि पापों मति के परा में
 क हो। 'माधुभाषोद्गमिननिजगुणान्वेषिणः' परिश्रमागे
 विरहित ज्ञान दर्शन और पापों लक्षणवाले आत्मगुणों में अन्वे-
 ष-रूप पानेवाले 'सप्राप्ताः'—हुए हैं, होने हैं, और होंगे।
 दशमाममयः :- ओं पाप ज्ञान रणों प्यास है। 'विश्व-विश्वो-
 कता'—ओं पापों संसार के उपकारी हैं। 'सद्गता'—ओं मने
 वाली हैं। 'दिव्य-दीप्तिः'—ओं दर्शन-गन्ध-रस और स्पर्श लक्षण
 परमार्थिक विकास में हीन-दिव्य ज्योतिर्मय है। 'स श्रीमान्
 सम्बन्धः'—उन अद्वितीय आत्मदर्शी को ध्यान करनेवाले
 गिणमवनाथ मर्मों की 'अव्यक्तताः' ! हे मोक्षमिलायी मध्य-
 तीव्र 'परमपदकृते'—सही जन्म उग मरण आदि भयों का मर्यादा
 कार है जंग मोक्षपद की प्राप्ति के लिए 'संन्यास' सेवा करो ॥ १ ॥

गुह्य-यानादकेनोच्चलमनिशयिनम्यच्छभावाद्भुनेन,
 यस्मादाहृत्य पून शिष्यपटनिगम कर्मपदप्रपथम् ।
 गिन्ध दृगयन्त्रा प्रकृतिमुपगतो निर्विकल्पस्वरूपः,
 नयन्नादयन्त्रजो,सा जगति जितपान वानगमः सदैव ।

अनुवाद—'अनिशयित-स्वरूप भावाद्भुनेन'—मन
 न और वाप ३ अ-य-न स्वरूप भावा में-परिणामों में अकृत
 १२० का धारण करनेवाले जिनने 'यस्माद्'—अपनेआप स्वय-

मधुद होकर 'उज्ज्वलं'-मर्यादा निर्दोष, 'शिव-पद-निगमं'-
 सोढ़ी स्थान में पहुँचानेवाले मार्गभूत 'धृत्तं'-संयम को स्वीकार
 करके 'नीरन्ध्रं'-अत्यन्त निविड 'कर्मपङ्कमपञ्चं'-आठका
 रूप कीचड़ के विस्तार को 'शुक्लध्यानोदकेन'-शुक्लध्यानरूप
 आनी से 'दूरयित्वा'-दूर करके-उदय-उदौग्रा और सत्तामें
 मात्पान्तिक भावने हटा करके, 'प्रकृतिं'-आत्मा की स्वाभाविक
 प्रकृति अवस्था को 'उपगतः'-प्राप्त करनेवाले, 'निर्विकल्प-
 चरः'-योग चपलता से रहित-निर्विकल्प-महज्जमभाषि स्वरूप
 आने हुए हैं ये, 'असौ'-ये 'जिनपतिः'-जिननाम कर्म
 रूप अद्वितीय पुण्यप्रकृति में चतुर्विध मंषरी स्थापना करनेवाले
 जनेधर, 'वीतरागः'-रागद्वेष में रहित परमात्म दशा में तीन होनेवा
 लें वीतराग, 'तार्क्ष्यजः'-पोंड़ेके चिह्नको धारण करनेवाले भगवान्
 श्रीमंभरनाथ स्वामी 'एव'-ही 'जगति'-जगत में 'मदा'-
 देना 'सेव्यः'-वन्दन-कीर्तन-पूजन आदि में मेरा करने
 योग्य हैं ॥ २ ॥

पार्थो विद्योतिरक्षप्रकर इव परिभ्राजते सर्वकाले,
 यस्मिन्निःशेषदोषव्यगमविशदे श्रीजितारम्भनृजे ।
 दुःप्रापो दुष्टमर्त्यैः स्फुटगुणनिकरः शुद्धबुद्धिक्षमादिः,
 कन्यागर्भानिवाप्तः स भवति यद्वताभ्यर्चनीयो न केनापि ।

अनुवाद—'साधो'—'समुद्रमे' 'विद्योनिस्तद्वत्करतय'—
 देदीप्यमान-मंजरी रत्नसमुद्र के जंमे 'निःशेष-शेष-व्यपगम
 विज्ञाने'—'समस्त दोषों के गर्वणा नष्ट होजाने में निर्मल स्वभाव
 होने 'परिमित'—'जिन 'धीजिभट्टः' ननु'—'धीजितारि नामक
 महाराजा के पुत्रान् धीजिभट्टनाथ स्वामिने 'दुष्टमर्थः'—'दुर्मन्त्रों
 को-विध्वंसो प्राप्तियो 'दुष्टप्रापः' अत्यन्त दुःखमें प्राप्त करने-
 योग्य-दुर्लभ 'मृदुपुष्टिभूमादिः'—'यद्यपि बरुं शायन रणी'
 को पवित्र भावना-शुद्धि, सामर्थ्य के होने पर भी अपराधियों
 पर धमा करना आदि 'स्फुटगुणानिभरः'—'ऐसे प्रकाशमान
 प्रसिद्ध गुणों का समूह 'मर्षकाले' निरन्तर 'परिष्ठाजते'—
 समकाल है । 'यः कल्याणधीनियामः'—'वे कल्याणलक्ष्मी-
 के निवास भूत भगवान् 'पदम्'—'बटो 'कथां' किन दिनेषियोंको
 'न अभ्यर्चनीयः' पूजने योग्य नहीं है ? अर्थात् अवश्य ही
 पूजनीय है इन श्लोक में तीसरे प चौथे चरण में 'क्षमा' और
 'कल्याण' पदका प्रयोग करके कहाने अपना नाम भी सूचित
 किया है ॥ ३ ॥

भाषा—जिनकी भक्ति में लीन चित्तवाले भगवत्जन जल्दी में
 अनन्त संसार के परिधमण में मुक्त हो कर पवित्र भावों में विकसित
 अनन्तज्ञान दर्शन और चाग्रि रूप आत्म गुणों में रमण करनेवाले
 होजाते हैं, अर्थात् निष्ठ होजाते हैं । जो परम ज्ञान रम में व्याप्त
 हैं । जो गारे संसार के उपशान्त हैं । जो पार्थलिक विभागों से हीन

सम्बुद्ध होकर 'उज्ज्वलं'—सर्वथा निर्दोष, 'शिव-पद-निगमं'—
 सिद्धि स्थान में पहुँचानेवाले मार्गभूत 'वृत्तं'—संयम को स्वीकार
 करके 'नीरन्ध्रं'—अत्यन्त निविड 'कर्मपङ्कप्रपञ्चं'—आठकर्म
 रूप कीचड़ के विस्तार को 'शुक्लध्यानोदकेन'—शुक्लध्यानरूप
 पानी से 'दूरयित्वा'—दूर करके—उदय—उदीरणा और सत्तामें
 आत्यन्तिक भावमें हटा करके, 'प्रकृतिं'—आत्मा की स्वामयिक
 अरूपी अवस्था को 'उपगतः'—प्राप्त करनेवाले, 'निर्विकल्प-
 स्वरूपः'—योग चपलता से रहित—निर्विकल्प—सहजसमाधि स्वरूप-
 वाले हुए हैं वे, 'असौ'—ये 'जिनपतिः'—जिननाम कर्म
 रूप अद्वितीय पुण्यप्रकृति से चतुर्विध संघकी स्थापना करनेवाले
 जिनेश्वर, 'वीतरागः'—रागद्वेष में रहित परमात्म दक्षा में लीन होनेवा-
 ले वीतराग, 'तार्क्ष्यध्वजः'—घोड़ेके चिह्नको धारण करनेवाले भगवान्
 श्रीगंभवनाथ स्वामी 'एव'—ही 'जगति'—जगत में 'सदा'—
 हमेशा 'मेव्यः'—वन्दन—कीर्तन—पूजन आदि से सेवा करने
 योग्य हैं ॥ २ ॥

वार्धो विद्योतिरत्नप्रकर इव परिभ्राजते सर्वकाले,
 यस्मिन्निःशेषदोषव्यगमविशदे श्रीजित्तारेस्तनूजे ।
 दुष्प्रापो दुष्टमत्वेः स्फुटगुणनिकरः शुद्धबुद्धिक्षमादिः,
 कल्याणश्रीनिवातः स भवति वदन्ताभ्यर्चनीयो न केपाम् ।

अनुवाद—‘चार्यो’—समुद्रमें ‘विद्योतिरजप्रकरह
देदीप्यमान-तेजस्वी रससमूह के जैमे ‘निःशेष-दोष-व्यप-
विशद्’—ममस्त दोषों के सर्वथा नष्ट होजाने में निर्मल स्व-
बाले ‘यस्मिन्’—जिन ‘श्रीजिनारेः तनूजे’—श्रीजितारि न-
महाराजा के पुत्ररत्न श्रीसम्भवनाथ स्वामिमें ‘दुष्टसत्त्वैः’—दुर्म-
को-मिथ्यात्वों प्राणियों ‘दुष्यापः’ अत्यन्त दुःखसे प्राप्त क-
योग्य-दुर्लभ ‘शुद्धबुद्धिक्षमादिः’—‘सब जीव करूं शान्त र-
की पवित्र भावना-बुद्धि, सामर्थ्य के होने पर भी अपराध-
पर क्षमा करना आदि ‘स्फुटगुणनिकरः’—ऐसे प्रकाश-
शुद्ध गुणों का समूह ‘सर्वकाले’ निरन्तर ‘परिभ्राजते-
चमकता है । ‘मः कल्याणधर्मानिवासः’—वे कल्याणल-
के निवास भूत भगवान् ‘चद्रत्न’—कहो ‘केपां’ किन द्वैतैषिय-
‘न अभ्यर्चनीयः’ पूजने योग्य नहीं है ? अर्थात् अवश्य
पूजनीय है इस श्लोक में तीसरे व चौथे चरण में ‘क्षमा’
‘कल्याण’ पदका प्रयोग करके कहाने अपना नाम भी सू-
किया है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिनकी भक्ति में लीन चित्तवाले भव्यजन उन्-
अनन्त संसार के परिभ्रमण में मुक्त हो कर पवित्र भावों में विश-
अनन्तज्ञान-दर्शन और चाग्रिभ रूप आत्म गुणों में रमण करनेवा-
होजाने हैं, अर्थात् मिट्ट होजाने हैं । जो एवम ज्ञान रस में व्य-
हैं । जो सारे संसार के उपयोगी हैं । जो पोट्टनिक चिकानों में हैं

दिव्य ज्योति स्वरूप हैं। उन अद्वितीय आत्म लक्ष्मीको धारण करने-
वाले श्रीसम्भवनाथ स्वामी की हे मोक्षामिलापियों ! मोक्षपदकी
प्राप्ति के लिये सेवा करो ॥ १ ॥

मन-वचन और काया के अत्यन्त स्वच्छ परिणामों से अद्भुत
जीवन को धारणकरनेवाले, स्वयं संयुद्ध होकर सर्वथा निर्दोष, सिद्धि
स्थानमें पहुँचानेवाले मार्गभूत-संयम को स्वीकार करके, अत्यन्त
निर्विद्ध आठ कर्मरूप कीचड़ के विस्तार को शुक्लध्यान रूप पानीमें
दूर करके-उदय उदीरणा और सत्तामें आत्यन्तिक भावसे हटाकरके,
आत्मा की स्वाभाविक अरूपी अवस्थाको प्राप्त करनेवाले, योगचपलता
से रहित निर्विकल्प सहज समाधि स्वरूपवाले वे, ये जिननाम
कर्मरूप अद्वितीय पुण्य प्रकृति से चतुर्विध संघकी स्थापना करनेवाले
जिनेश्वर, वीतराग देव घोड़े के लाञ्छन को धारण करनेवाले
भगवान् श्री सम्भवनाथ स्वामी ही जगत् में हमेशा वन्दन पूजन
शोदि में सेवा करने योग्य हैं ॥ २ ॥

समूह में देदीप्यमान तेजस्वी ग्ग समूह के जैमे, समस्त
दोषों के सर्वथा नष्ट हो जानेसे, निर्मल स्वभाववाले, जिन श्रीजिनाधि-
महागजा के पुत्र ग्ग श्री सम्भवनाथ स्वामि में दृग्गम्य मिथ्यात्वियों
को अन्यन्त दुःख में प्राप्त करने योग्य दुःखसे, 'मय जीव कर्म
प्राप्तन र्मी' की पण्डित भावना रूप-गुद्ध बुद्धि, मामात्र के होने
पर भी अणुमात्रियों को माफ़ी देने रूप-धर्मा आदि प्रसिद्ध गुणों
का समूह निगन्ता चमकता है। वे कल्याण लक्ष्मी के निवास भू

भगवान् कदो दिन दिनैपियो को पूजने योग्य नहीं हैं ? अर्थात्
अवश्य पूजनीय हैं ॥ १ ॥

श्रीअमिनन्दन-जित-चैत्यवन्दनम् ।

(द्वाविंशतिवचन-छन्दः)

विशद-शारद-सोम-समाननः

कमल-कोमल-चारु-विलोचनः ।

शुचिगुणः सुतरामभिनन्दन !

जय मुनिर्मलनाम्नित-भूषणः ॥ १ ॥

अनुवाद—'विशद-शारद-सोम-समाननः'—पादल आदि
आवर्णों का सर्वथा प्रभाव होने में अत्यन्त निर्मल ऐसी शारद
शुक्ली पूर्णिमा में उदित होनेवाले चन्द्रमा के जैसे मनोहर और
निर्विकारी सुखदाने, 'कमल-कोमल-चारु-विलोचनः'—प्रफुल्लित
हृष्य के समान कोमल, और सुन्दर लोचनोंवाले, 'शुचिगुणः'—
निर्दोष-पवित्र और अनन्त गुणों को धारण करनेवाले, 'मुनिर्म-
लनाम्नित भूषणः'—प्रशुभ स्वभाव, गौरादित, सब प्रकार के गुण-
धर्मों में पूर्ण और विशद अतिशयो में शिवाजित दर्शयवाले,
'अभिनन्दन' ! इय अवसरविर्णोकालकी चार्मीर्मा में होनेवाले
धौपे भगवान् हे श्रीअमिनन्दन भगवा ! 'सुतरा जय'—आप
अनन्त कालतक उपरान्त वला ॥ १ ॥

नेत्र ! :-अन्तरंगदुःखमनों को जीतने वाले-मामान्य केवलियों के स्वामी तीर्थंकर नाम कर्म की पुण्य-प्रकृतिके अद्भुत और अलौकिक ऐश्वर्य को धारण करनेवाले, हे अभिनन्दन देव ! ' ते पदं ' -तुम्हारे धारण कमल, अथवा अरिहंत अवस्था और मित्र अवस्था रूप तुम्हारा पद ' कश्चिरभक्ति-सुयुक्तिभूतः मम ' -निर्दोष और सुन्दर भक्ति की विशिष्ट युक्तियों को धारण करनेवाले मेरे लिये ' निरंतरं ' -हमेशा भवोभय में ' धारणं अस्तु ' -धारणभूत हो ॥ ३ ॥

मावार्थ—पादल आदि आवरणों के गर्वभा अभाव होने में अत्यन्त निर्मल ऐसी शरद् श्रुत की पूर्णिमा में उदित होनेवाले चन्द्रमा के जैसे मनोहर और निर्विकारी मुखवाले, प्रफुल्लित कमल के समान कोमल कमनीय लोचनोंवाले, निराश्रुत-परिय और अनन्त ज्ञानादि गुणों को धारण करनेवाले, विशिष्ट रूपवान्, रोग-रहित, सब प्रकारके प्रधान लक्षणों में पूर्ण और विशद अनिद्वयों में विगलित शरीरवाले, इस अवगर्हिणी कालकी चौथीमी में होनेवाले चौथे भगवान् हे श्रीअभिनन्दन स्वामी ! आप अनन्त काल तक जगज्जने वधों ॥ १ ॥

हे मनोहर चन्द्र के लालछन में लालित्य वर्णकमलवाले ! हे देव के भारी भण्डार ! मैं इस लोक में मेरे इच्छित कार्यों की सिद्धि करनेवाले आपका लाल कर अन्य किसी को भी नहीं मानता हूँ ॥ २ ॥

हे उच्छिष्ट मंग को धारण करनेवाले, - हे तब प्रसाद

ने रोकनेवाली प्रधान शक्ति से सम्पन्न ! हे श्रीमान् संवर नाम
 राजाधिराज के पुत्र रत्न ! अव्याप्ति- अतिव्याप्ति और असंभव का
 उपव्रयी से मुक्त अविसंवादी नयमार्गके प्रवर्तन में प्रौढ पाण्डित्य
 से धारण करनेवाले हे मार्गदर्शक ! अन्तरंग दुश्मनों को जीतनेवाले
 सामान्य केवलियों के स्वामी- श्रीतीर्थंकर नामकर्म की पुण्यप्रकृति
 के अद्भुत और अलौकिक ऐश्वर्यको धारण करनेवाले हे अभिनन्दन
 देव ! तुम्हारे चरण कमल या अरिहंत और सिद्धावस्था रूप तुम्हारे
 चरण निर्दोष और सुन्दर भक्तिकी विशिष्ट युक्तियों को धारण करने
 वाले मेरोलिये हमेशा- भवोभवमें शरण भूत हो ॥ ३ ॥

श्री सुमतिनाथ-जिन-चैत्यवन्दनम्

(उपेन्द्र वज्रा वृत्तम्)

सुवर्णवर्णों हरिणा सवर्णों,

मनो वनं मे सुमतिर्वलीयान् ।

गतस्ततो दुष्टकुट्टिराग-

द्विपेन्द्र ! नेव स्थितिरत्रकार्या ॥ १ ॥

अनुवादः— ' दुष्ट-कुट्टिराग-द्विपेन्द्र ! '— एकान्त

वादान्मक- अपथार्थसिद्धान्तका प्रतिपादन करनेवाले सांख्य-सौगता
 आदि मिथ्यादर्शनों के अभिनिवेश लक्षण वाले- कुट्टिरागरूप

समं दुरात्मीय-परिच्छेदन !
सुबुद्धि-भर्त्ता सुमतिर्जिनेशो,

मनोरमः स्वान्तर्मितो मदीयम् ॥ ३ ॥

अनुवादः—‘दुष्ट-बुद्धे !’ प्रतिक्षण में नाश होनेवाले, आत्मा भिन्न, ऐसे पुद्गलादि द्रव्यों में ममत्व बढ़ानेवाली अशुद्ध चेतना पैदा होनेवाली हे दुष्ट कुमति देवी ! ‘दुरात्मीयपरिच्छेदेन’-निर्गति को देनेवाले कर्मबन्धन में कारण भूत मिथ्यात्व, अविस्मृतता और योगरूप अपने कुत्सित परिवार के ‘समं’-साथ व इतः’- यहां से-मेरे पास से ‘सुदूरं’- बहुतदूर ‘व्रज’-वाली जा, क्यों कि ‘सुबुद्धि-भर्त्ता’- अनन्तज्ञान दर्शनादि गुणों में रमणकरने वाली शुद्धचेतना रूप सुमति के स्वामी ‘मनोरमः’-व्यात्मा-योगियों के मन को प्रमत्त करनेवाले ‘जिनेशः’-सुमतिः’-तीर्थ को प्रकट करनेवाले देवाधिदेव श्री सुमतिनाथ भगवान् ‘मदीयं’- मेरे ‘स्वान्तं’- चित्तमें ‘इतः’- पहुँचे । हे दुष्टबुद्धे ! अब यहां तेरा निभाव नहीं होगा ॥ ३ ॥

भावार्थः—एकान्तवादान्तक अयथार्थ मिद्वान्त का प्रतिपादन करने वाले मांस्य बाध आदि मिथ्यादर्शनों में अभिनिवेश लक्ष्य अक्षित कुट्टिगम रूप हे दुष्ट गजराज ! मेरे मन रूप वन में कमनीय चित्त की कानि की धारण करने वाले अप्रतिहत पलशाली मिहके जैसे तू तू स्वामी पधार है । इसलिये अपनी जान बचाने के लिये तूने यहां [मेरे मन रूप वन में] नहीं टहरना चाहिये ।

नहीं तो डर के पड़े तबें धर्मस्थान की खोजलेगे ॥ १ ॥

अरे प्राप्य मान लक्षणवाले द्वेषरूप मयद्वार दुःखजन-आपदेश ! दीपरागो यदाग्राभो के स्वार्थी, मार्पकनामा धीमेपनोन्ट के पुत्ररत्न धीगुमतिनाथ स्वार्थी भरे मन में व्येदरूप में मज्जल में के जंगे बर्जे रहें हैं । ये मगवानु ज्ञान की छलमात्र में छान्त कर देंगे । यदि तू अपना दिग जाहना है तो—मेरे मनमें दूर हो जा । नहीं तो तेरा अन्त होनेवाला है ॥ २ ॥

प्रतिक्षण माज्जने वाले आत्मा में भिन्न ऐसे वृद्धनादि पदार्थों में सम्यक् बहानेवाली अगुद्ध चेतना में पैदा होनेवाली दृष्टि गुमति देखी ! दुर्गतिको देनेवाले कर्मबन्धनमें कारणभूत मिथ्यात्व, अविश्वसि, कषाय और योगरूप अपने बुद्धिगत परिहार के साथ तू यहाँ में [में] पावने] बहुत दूर चली जा । क्योंकि अनन्त मान दृष्टानादि गुणों में समन करने वाली अगुद्धचेतनारूप गुमति के स्वामी भग्यात्म-योगियों के मनका प्रमत्त करने वाले तीर्थंकर धीगुमति-नाथ मगवानु में चित्तमें आवृत्त हैं । हे दुर्मने ! अब यहाँ तेरा निवास नहीं होगा ।

श्रीपद्मप्रभजिन-चैत्यवन्दनम् ।

(भुजङ्ग प्रवाल वृक्षम्)

उदाह-प्रभासपटलेर्भासमानः ,

कृतात्यन्त-दुर्दान्त-दोषापमानः ।

सुसीमाङ्गज ! श्रीपतिदेवदेवः ,

सदा मे मुदाभ्यर्चनायस्त्वमेव ॥ १ ॥

अनुवादः—‘उदार-प्रभामण्डलेः’-अनन्त पुण्यसाधको
 मे पैदा होने वाले उदार-देदीप्यमान प्रभामण्डलो मे-सम्पत्ति
 योग-जनित तेजः पुत्रों मे ‘भाममानः’-पूर्णतया प्रकाशित होने
 हुए-ज्योतिर्मय, ‘कृतात्यन्त-दुर्दान्त-दोषापमानः’-दुःख मे
 दमन करने योग्य दोषों को आत्यन्तिक भार मे-गर्वा अपमान
 करनेवाले-गंगा के कारण भूत दोषों को सारेया मिटा देनेवाले
 ‘श्रीपतिः’-अनन्त अक्षय और अनन्त आत्मलक्ष्मी के स्वामी
 ‘देवदेवः’-इन्द्रादि के भी पूज्य ऐसे देवधिदेव ‘सुसीमा
 ङ्गज !’-श्रीमान ‘धा’ नामक महागङ्गा की पङ्कगती श्रीपति
 सुसीमादेवी के तनय-देवप्रसन्नसामिन ! ‘गङ्गा’-दमेगा ‘मे’-
 मेरा देव ‘स्व’ एवं ‘-प्रापती’-मुदा’-निःकाट निग की प्रसन्न
 मे ‘अभ्यर्चनाय’-सिवादि इत्य और भार मे पूजा की
 देव्य दे ॥ १ ॥

यदीय मनः पङ्कज निगमय,

स्वयात्पङ्कजं व्ययस्वमेव देव !,

प्रयत्नस्वयं समेवानिगमं

जगन्नाथ ! जानामि लोके मुधन्यम् ॥ २ ॥

अनुवादः—‘देव !’-दिव्यस्वरूप को धारण करनेवाले
देव ! ‘सर्वांगे’-त्रिम भूतवात्मा के ‘मनः पङ्कजं’-हृदय कम-
लों ‘स्वयाभ्यवर्त्तेण’-स्वयंस्वरूप आपने ‘निस्पृहं एव’-मदैव
अनङ्गुलं’-गुणोमित किया है । ‘मं एव’-उगो महात्मा को
जगन्नाथ’-हे जगद्दर्शक ! लोके’-लोकों लोक में ‘प्राधनस्य-
स्य’-लोकेश्वर स्वरूपवाला ‘अतिगुणं’-अत्यन्त परिश्र और
मुधन्यं’-धन्यवादास्पद ‘जानामि’-मैं जानता हूँ ॥ २ ॥

अतोऽर्धाश ! पद्मप्रभाऽऽनन्दधाम,

स्मरामि प्रसामं तवेवाङ्ग नाम ।

मनोवाञ्छितार्थप्रदं योगिगम्यं,

यथा चक्रवाको रवेर्धामसम्यम ॥ ३ ॥

अनुवाद — ‘अन’-‘हमलिये’ यथा-‘जैसे’ ‘सम्यं’-
‘सुन्दर’ ‘रवेर्धाम’-‘सूर्य’ प्रकाश को ‘चक्रवाकः’-‘चक्र-
वाक’ पक्षी चाहता है, वैसे है । ‘अङ्ग-पद’ प्रभ-‘अर्धाश !’-
‘ध्यानाभिप्रेक्षासूत्रम्’ ‘आनन्दधाम’-‘वाम आनन्दका मन्दिर’
‘मनोवाञ्छितार्थप्रद’-‘इच्छितार्थ’ का देनेवाला ‘योगिग-
म्य’-‘अध्यात्म सत्त वाग्विया को जानने योग्य’ ‘तव नाम-एव’-
‘आपके नाम को ही मैं प्रशंस अत्यन्त’ ‘स्मरामि’-‘स्म-
रता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थः—अनन्त पुण्य राशियों में पैदा होनेवाले
 देदीप्यमान प्रमामण्डलों में—नेत्रःपुडों में पूर्णतया प्रकाशित
 हुए, ज्योतिर्मय, दुःगमे दमन करने योग्य [१-दानान्तराय
 लामान्तराय २-वीर्यान्तराय ४-भोगान्तराय ५-
 ६-हास्य ७-रति ८-अरति ९-मय १०-गृणा ११-शोक १२
 १३-मिथ्यात्व १४-अज्ञान १५-निद्रा १६-अविगति १७-
 १८ द्वेष रूप *] दोषों का आन्यन्ति भाव में—मर्त्यता अपमान कं
 बोल-संसार के कारण भूत दोषों को मर्त्यता मिटा देनेवाले, अक
 अक्षय और अनन्त आत्म लक्ष्मी के स्वामी, इन्द्रों के भी पूज
 देवाधिदेव, श्रीमान् धरनामक महाराजा की पट्टरानी श्रीमती सुमीन
 देवी के तनय हे पद्मप्रभ स्वामिन् ! हमेशा मेरे लिये आप ही निष्क
 पट चित्त की प्रमत्तता से विधिपूर्वक द्रव्य और भाव से पूजा करने
 योग्य हूँ ॥ १ ॥

दिव्य स्वरूप को धारण करनेवाले हे देव ! जिस भव्या
 त्माके हृदय कमल को ध्येयरूप में आपने सदैव सुशोभित किया है।
 हे जगदीश्वर ! तीनलोक में मैं उमी महान्मा को लोकोत्तर स्वरूप
 वाला, अत्यन्त पवित्र, और धन्यवादास्पद मानता हूँ ॥ २ ॥

*—अन्तराया दान-लान-वीर्य-भोगोपभोगगाः ।

हासो रत्यस्ती भीतिर्जुगुप्सा शोक एव च ॥ ७२ ॥

कामो मिथ्यात्वज्ञानं निद्रा आविरतिस्तथा ।

रागो द्वेषश्च नो दोषास्तेषामष्टादशाप्यमी ॥ ७३ ॥

(अविधानचिन्तामणि)

इमानिमे जेमे चरके मनोहर प्रकार को चकवा नामक पक्षी
हता है, वेमे ही है पद्मप्रमथ्यामिन् । परम आनन्द का मन्दिर
छिन्न अर्थको देनेवाला, अस्यान्म मन्त्र योगियों को जानने योग्य-
मे आपके नाम का ही मैं अत्यन्त स्मरण करता हूँ ॥ ३ ॥

श्रीसुपार्श्व-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(तोटक-छन्दः)

जयवन्तमनन्तगुणैर्निभृतं,

पृथिवीसुतमद्भुतरूपभृतम् ।

निज-वीर्य-विनिर्जित-कर्मफलं,

सुरकोटिसमाश्रितपद्मकमलम् ॥ १ ॥

अनुवादः—‘जयवन्तं’—अद्वितीय जयलक्ष्मी को धारण
करनेवाले ‘अनन्तगुणैः’—अनन्त प्रात-दशने-अव्याबाध समधि-
वाशे—अध्याम्यति—अस्पृश्य अगुलपुत्र-वीर्य आदि अनन्त २
गुणों मे ‘निभृतं’—परिपूर्ण ‘पृथिवीसुतं’—श्रीमान प्रतिष्ठ नामक
रहागजा की पटुगती धीमती पृथ्वीदेवी के अंगज ‘अद्भुत-रूप-
भृतं’—अलौकिक रूपवाले ‘निजवीर्यविनिर्जितकर्मफलं’—अपनी
ही शक्ति से ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को अनन्त कामेण वगेणा को
जीतनेवाले ‘सुरकोटिसमाश्रित पद्मकमलं’—कम मे कम एक
होइ देवताओं मे समश्रित मेधित चरण कमलवाले ॥ १ ॥

निरुपाधिक-निर्मलसौख्यनिधि,
परिवर्जितविश्वदुरन्तविधिम् ।
भववारिनिधेः परपारमितं,

परमोज्ज्वलचेतनयोन्मिलितम् ॥ २ ॥

अनुवादः—‘निरुपाधिक निर्मलसौख्यनिधि’

व्याधि और उपाधिसे रहित, अधिक विशद सुख के
‘परिवर्जितविश्वदुरन्तविधिं’—जिसका परिणाम-अत्यन्त दुः-
मय होता है ऐसे सांसारिक विधिव्यवहार को सर्वथा
‘भववारिनिधेः परपारं-इतं’—संसार समुद्र के परले
पानेवाले, ‘परमोज्ज्वलचेतनया-उन्मिलितं’
उज्ज्वल ज्ञानशक्तिसे विकशित ॥ २ ॥

कलधौत-सुवर्णशरीरधरं,
शुभपार्श्व-सुपार्श्वजिनप्रवरम् ।

विनयावनतः प्रणमामि सदा,

हृदयोद्भवभूरितर-प्रमुदा ॥ ३ ॥

(विशेषकम् ०)

—इस चैत्यचन्दन के-तीन श्लोकों में संबंध सूचक वि-
‘प्रणमामि’] एकही प्रयुक्त की गई है। इस प्रकार के तीनों श्लोकों
‘वैदिक विद्वानों ने ‘विशेषक’ संज्ञा निरूपित की है। जैसे कि-

કલુષાદઃ—'જાન્યોત્તમશુભર્ગાદ્યાં ૧૧૫૨ં ૧-ભાગ, વિષે કુળ
 રા શુભર્ગ કે શમાન જાતિપૂર્ણ વાચ્ય દ્વાન્ય વરમાન્યો મેં જેને
 'વરજવધનામક શિવન આજ શા અનુભવ મંદવાન વિદિત પ્રાપ્ત
 ધારણ જાહેરાતે, તેને 'દ્વાચર્યાચ્ચ-શુભર્ગ-જિમ્મકર્'—તુલ્ય
 નિદોષ વાચ્ય દેશવાલે શોભુવાર્થનાથ શ્યામી શીર્ષક મળવાન
 'દુર્યોદ્ધવ શુભિતરમ્મુદા' દુર્યોધે પેલા દોષવાલે વાચ્ય પ્રમાદ
 -સોમર્થવક. ધારણે 'શદ્ધા'—દેશી 'મળમાયિ'—મળાય
 ના હું ।

ધાર્વાચઃ—અર્થનીય અપ ભરમીકો ધ્યાન જેનેવાલે અનન્ય
 ન દર્શન પ્રાપ્તવાચ્ય ગમાયિ જાગિત્ર અધ્યયનિ-અરવિચ-અનુભ-
 વ-ધાર્ય આદિ અનન્ય ન શુભો મેં વર્ણિત, ધીમાન પ્રાપ્ત નામક
 ભાગ્ય શી વૃદ્ધાની ધીમાની વૃદ્ધીદેશી કે અંગજ, આર્થિક રુપ-
 ને, અવની દી ધાન મેં જ્ઞાનાવળીય આદિ આટલમો શી અનન્ય
 ણિા શો જાતનવાચ્ય, જમને જમ ભજ્ય શોદ દેશનાઓ મેં ગમાયિત-
 વેન જાલજમલવાં ॥ ૧ ॥

દ્વાચર્યા શુભર્ગમિતિપ્રાત્. વિમિ મોર્ચિ.વિશેષકમ્ ।

જાણવક શત્રુમિ વ્યાકુ. શુભર્ગે કુલકે વગુનમ્ ॥ ૧ ॥

વક શત્રુવધવાલ ધીવ વક જાણવાલ રા વરાવો શો 'શુભ
 દલ દે'—વન દો ભાગ વરાવો શો વિશેષક વદન દે'—વાવ વરાવો
 । જાણવક વદન દે'—વરાવ વરાવ શો જાણવાલ વરાવો શો
 વદન વદન દે' ।

आधि-व्याधि और उपाधि से रहित अधिक, विशद भण्डार, जगतके दुःखान्त विधिव्यवहारों को सर्वथा १० ॥ संसार समुद्र के परले पार पहुंचानेवाले, आवरण रहित उत्कृष्ट-उज्ज्वल चैतन्य शक्ति से विकशित ॥ २ ॥

साफ किये हुए सुन्दर सुवर्ण के समान कान्ति पूर्ण शान्त परमाणुओं से बने हुए-वज्रकपमनाराचसंहनन और मन चतुरस्र संस्थान विशिष्ट शरीर को धारण करनेवाले, ऐसे उत्तम निर्दोष पार्थदेश-पसवाडोंवाले-तीर्थंकर भगवान् श्रीसुपार्थ स्वामी को हृदय में पैदा होनेवाले परम प्रमोद में मैं हमेशा करता हूँ ॥ ३ ॥

श्रीचन्द्रप्रभ-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(वंशस्थ-वृत्तम्)

अनन्त-कान्ति-प्रकरेण चारुणा,

कालाधिपेनाश्रितमात्मसाम्यतः ।

जिनेन्द्र ! चन्द्रप्रभ ! देवमुत्तमं,

भवन्तमेवात्माहितं विभावये ॥ १ ॥

अनुवादः—‘जिनेन्द्र’—हे गामान्य केवलियों में सुप्रसिद्ध चन्द्रप्रभ !—चन्द्रके समान कपनीय कान्ति को धारण करनेवाले

रात्री नष्ट होजाती है, और 'दिनं'—दिन उदित होता है ॥ २

सदैव संसेवन—तत्परे जने,

भवन्ति सर्वेऽपिसुराः सुदृष्टयः ।

समग्रलोके समचित्त—वृत्तिना,

त्वयैव सञ्जातमतो नमोऽस्तु ते ॥ ३

अनुवादः—‘सर्वे अपि सुराः’—इस संसार में ब्रह्मा-विष्णु-महेश-सूर्य-चन्द्र-इन्द्र आदि सभी देव ‘सदैव’—निरन्तर ‘संसेवन—तत्परे’—अपनी पूजा-भक्ति में तत्पर ‘जने’—स्त्री पुरुषों ‘सुदृष्टयः’—प्रसन्नदृष्टिवाले ‘भवन्ति’—होते हैं। ‘समग्रलोके’—निन्दक और वन्दक ऐसे समस्त प्राणियों में ‘समचित्तवृत्तिना’—समान मनोवृत्ति—समदर्शी ‘त्वया—एव’—आप से ही ‘सञ्जातं’—जन्म हुआ गया है ‘अतः’—इसलिये हे भगवान् ‘ते’—आपको ‘नमो’—नमस्कार ‘अस्तु’—हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अपनी समानता से अनन्त शान्त कान्ति के समुदाय को धारण करनेवाले मनोहर चन्द्रप्रभ ने लांछन से आश्रित हुए आपको ही मैं आत्माहितैषी परमोत्तम देव मानता हूँ ॥ २ ॥

हे परम आदर्श चारित्र्य गुणोंके भण्डार ! नैयायिक आदि दर्शनियों के माने हुए, जगत्कर्तृत्व-आदि भावों से रहित होने भी विश्वस्वामित्व को धारण करनेवाले हे जगत्प्रभो ! आपके

रात्री नष्ट होजाती है, और 'दिनं'—दिन उदित होता है ॥ २ ॥

सदैव संसेवन—तत्परे जने,

भवन्ति सर्वेऽपिसुराः सुदृष्टयः ।

समग्रलोके समचित्त—वृत्तिना,

त्वयैव सञ्जातमतो नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

अनुवादः—‘सर्वे अपि सुराः’—इस संसार में ब्रह्मा-विष्णु-महेश-सूर्य-चन्द्र-इन्द्र आदि सभी देव ‘सदैव’—निरन्तर ‘संसेवन-तत्परे’—अपनी पूजा-भक्ति में तत्पर ‘जने’—स्त्री पुरुषों में ‘सुदृष्टयः’—प्रसन्नदृष्टिवाले ‘भवन्ति’—होते हैं। ‘समग्रलोके’—निन्दक और वन्दक ऐसे समस्त प्राणियों में ‘समचित्तवृत्तिना’—समान मनोवृत्ति—समदर्शी ‘त्वया—एव’—आप से ही ‘सञ्जात’—हुआ गया है ‘अतः’—इसलिये हे भगवान् ‘ते’—आपको ‘नमः’—नमस्कार ‘अस्तु’—हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अपनी समानता से अनन्त शान्त कान्ति के समुदाय को धारण करनेवाले मनोहर चन्द्रमा के लांछन में आश्रित हुए आपको ही मैं आत्महितैषी परमोत्तम देव्यस्वरूपवाले देव मानता हूँ ॥ २ ॥

हे परम आदर्श चारित्र्य गुणोंके भण्डार ! नैयायिक आदि दर्शनियों के माने हुए, जगत्कर्तृत्व-आदि भावों से रहित होने भी विश्वस्वामिन्व को धारण करनेवाले हे जगत्प्रभो ! आपके

और वन्दन करने योग्य हे जगद्वन्द्य ! 'मकराङ्कित-पाद-पद्म !'-
 मगर मच्छ के लाञ्छन से लाञ्छित चरण कमलवाले हे भगवन् !
 'सुग्रीव जात'-श्रीमान् सुग्रीव नामक राजाधिराज के तनय
 हे श्रीसुविधिनाथ स्वामिन् ! 'जिन-पुङ्खव !'-तीन भद्र पहले वीक्ष-
 स्थानक महातप की आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म को पैदा
 करनेवाले हे जिनेन्द्र ! 'शान्ति-सद्म'-हे शान्ति के मन्दिर !
 'भव्यात्म-तारण-परोत्तम-धानपात्र !'-भवसमुद्र में डूबे
 हुए मोक्षके अधिकारी-भव्यात्माओं को तिराने के लिये तत्पर निश्छिद्र
 मजबूत और उत्तम ऐसे-जहाजरूप हे तीर्थनाथ ! 'विरूपात्'-
 विकृत रूपवाले-भयङ्कर 'भव-वारिनिधेः'-संसार सागरसे 'मां'-
 मुक्त हो 'तारयस्व'-तिराइये-पार कीजिये ॥ १ ॥

निःशेष-दोष-विगमोद्भव-मोक्ष-मार्ग

भव्याः श्रयन्ति भवदाश्रयतो मुनीन्द्र !।

संसेवितः सुरमणिर्बहुधा जनानां,

किं नाम नो भवन्ति कामिनसिद्धिकारी ! ॥२॥

अनुवादः— 'मुनीन्द्र !'- हे मुनियों के स्वामी-

श्रीपुण्यदन्त-भगवान् ! 'भवदाश्रयतो'-आपके आश्रय
 में-अमाद्याण-निमित्त काण को प्राप्त करके 'भव्याः'-जन्म
 मरण में मुक्त होने की इच्छावाले भव्यजीव 'निःशेष-दोष-
 विगमोद्भव-मोक्ष-मार्ग'-अज्ञानादि समस्त दोषों के विलीन

नाथ ! [आप मेरे लिये] ' तथा विधेहि '- ऐसा करदे कि 'अहं'-मैं 'शश्वद्'- प्रतिक्षण 'तव'-आपके 'दर्शन-वल्लभः'- दर्शन का प्रेमी ' भवामि '-होऊं-बना रहूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—तीनों जगत् के स्तुति और वन्दन करने योग्य हे—जगद्बन्ध ! मगर मच्छ के लान्छन से लांछित चरण कमलवाने हे—भगवन् ! श्रीमान् सुग्रीव नामक राजाधिराज के तनय हे श्रीसुविधिनाथ स्वामिन् ! तीन भव पहले वीमस्थानक महातप की आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म को पैदा करनेवाले हे जिनेन्द्र ! हे शान्ति के मन्दिर ! भवसमुद्र हवते हुए मोक्षके अधिकारी भव्यात्माओं के तिगने के लिये निश्छिद्र—मज्जवृत और उत्तम ऐसे जहाज रूप हे तीर्थनाथ ! विकृत रूपवाले भयंकर संसार सागर से मुझको पाव कीजिये ॥ १ ॥

हे मुनियों के स्वामी श्रीपुष्पदन्त भगवान् ! आपके आश्रय रूप-असाधारण निमित्त को पाकर मुमुक्षु-भव्य जीव अज्ञानादि समस्त दोषों के विलीन होजाने में पैदा होनेवाले मुक्ति मार्ग को पाते हैं । फिर उनका संसार में आवागमन नहीं होता । बहुत प्रकार में सेवन किया हुआ महामहीमशाली चिन्तामणि क्या मनुष्यों की कामना मिट्टिको नहीं करता है ? जरूर करता है । वैसे ही आप की .. ग्रहण रूप सेवा भव्यात्माओं की मिट्टि को करती ही है ॥ २ ॥

हे सुविधिनाथ स्वामी ! उस प्रकार के काल-स्वभाव नियति-पुर्वकृतकर्म और पुरुषार्थ आदि कारणों के मिलने पर परोपदेश

पियशःकलाप-कलितं'—संसारव्यापी यशः समूह से युक्त
 'कैवल्य-लीलाश्रितं'—कैवल्य ज्ञान की अनन्त लीलाओं से
 बोधजनित आनन्द की अवस्थाओं से आश्रित, 'नन्दा-कृष्णि
 समुद्भवं'—श्रीमती नन्दा महाराणी की कूख से पैदा होने वाले
 'दृढरथ-क्षोणीपतेर्नन्दनं'—श्रीमान् दृढरथ नामक भूपति के नन्दन
 'जिनवरं'—तीर्थंकर देव 'शीतलं-प्रभुं' श्रीमत्शीतलनाथ स्वामी
 को 'वन्दे'—मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

विश्वज्ञानविशुद्धसिद्धिपदवीहेतुप्रबोधं दधद्,
 भव्यानां वरभक्ति-रक्तमनसां चेतः समुद्धासयन् ।
 नित्यानन्द-मयः प्रसिद्धसमयः सद्भूतसौख्याश्रयो
 दुष्टानिष्टतमः प्रणाशतरणिर्जीयाजिनः शीतलः ॥२॥

अनुवादः—'विश्वज्ञान-विशुद्धसिद्धिपदवीहेतु-प्रबोधं'
 पूर्ण ज्ञान से विशुद्ध-पुनर्जन्म आदि दोषों से रहित ऐसी . १७.
 समाधि स्वरूप सिद्धि पदवी के अमाधारण कारणभूत प्रकट क्रियात्मक
 बोध को 'दधद्'—धारण करने हुए, 'वरभक्तिरक्त-मनसां'-
 सरलता पूर्ण प्रधान विनय भक्ति में अनुरक्त मनवाले 'भव्यानां'
 प्राणियों के 'चेतः'—चित्त को 'समुद्धासयन्'—विशदित
 करते हुए—मोक्ष के अनुकूल बनाने हुए, 'नित्यानन्दमयः'-
 अनश्वर-शाश्वत अनन्त आनन्द से पूर्ण, 'प्रसिद्धमयः'—न
 और प्रमाणों से प्रमाणित प्रसिद्ध सिद्धान्त के प्रणेता, 'सद्भूत-सौ'



अपने छल-बल की चचलाहट से भयंकर स्वरूपवाली 'दुष्टा'-
दुर्गति के हेतुभूत कलुषित स्वभाववाली, ऐसी 'मम'-मेरी 'म्यनिष्टकृ
दृष्टिना'-आत्मा में रही हुई कुदृष्टिता अशुद्धपरिणति कुमति 'मद्यः
एकदम 'अपचिन्महा'-अतहाय माय से निर्वले 'भूत्वा'-हो
कर 'ममग्रनया'-सर्वतोभावेन-सर्वथा 'दूरंध्यपगतवती'-दूर
चली गई-समूल नष्ट होगई ॥ १ ॥

निरुपमसुखश्रेणी-हेतुर्निराकृतदुर्दशा,

शुचितर-गुणग्रामावासा निसर्गमहोज्ज्वला ।

हृदय-कमले प्रादुर्भूतासुतत्त्वरुचिर्मम,

विदलित-भवभ्रांतयस्याप्यजस्रमनुस्मृतेः॥ २ ॥

अनुवादः—'अजस्रं'-हमेशा 'यस्य अनुस्मृतेः'-जिन
का स्मरण-ध्यान करने से 'अपि'-भी 'निरुपम-सुखश्रेणीहेतुः'
उपमातीत-अपूर्व सुखममूह की साधना में असाधारण कारणभूत,
'निराकृत-दुर्दशा'-दुर्गति जन्य दुर्दशा को हटानेवाली, 'शुचि-
तरगुणग्रामावासा'-अन्यन्त पवित्र गुणगण की निवासभूमि
'निसर्गमहोज्ज्वला'-स्वभाव से ही अन्यन्त उज्ज्वल और 'विद-
लितभवभ्रांतिः'-अनन्त भव भ्रमण को मिटानेवाली ऐसी,
'सुतत्त्वरुचिः'-गम्यरू तात्पर्य-शुद्ध चेतना 'मम'-मेरे 'हृदय-
कमले'-हृदय कमल में 'प्रादुर्भूता'-प्रकट हुई है ॥ २ ॥

होगई ॥ १ ॥

हमेशा जिनका ध्यान करने से निरुपम सुखश्रेणियों की उत्पत्ति में हेतुभूत, दुर्गति जन्य दुर्दशा को हटाने वाली, शुचिता-गुण समूह की निवाम भूमि, स्वभाव से ही महोज्ज्वल, और अनन भव भ्रमण को मिटाने वाली यथार्थ तत्त्वरुचि मेरे हृदय कमल में प्रकट हो गई ॥ २ ॥

जो परोपकार बुद्धि वाले, दान देने में दक्ष, जगत की व्यथा को हरनेवाले, यथायोग्य विशिष्ट क्रिया वाले, ज्ञानभातु से मोक्षमार्ग को प्रकाशित करने वाले और राजाधिराज श्रीविष्णु महा-गजा के वंशाकाश में प्रमाकर-सूर्य के समान उदित हुए, वे ग्यारहों तीर्थंकर श्रीश्रेयांसनाथ भ्यामी मेरी प्रबोध समृद्धि को बढ़ाने वाले हों ॥ ३ ॥

श्रीवामुपृज्य-जिन-चैत्यवन्दनम्

(रघोदत्ता-छन्दः)

पूर्ण-चन्द्र-कमनीय-दीधिति-

भ्राजमानमुत्तमदूभुतश्रियम् ।

शान्त-दृष्टिमभिरामचोदितम्

शिष्टजन्तु-परियेष्टिनं परम् ॥ १ ॥

अनुवादः—' पूर्णचन्द्रकामनीयशीधिति-प्राजमानमु-
त्सवं'-सगद् श्रुतु की पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के जंगी कान्त-कांति
विगलित सुगराते, ' अद्भुतधियं'-आश्चर्यजनक अष्टमहाप्रातिदा-
कांतिविगलित-दिव्य लक्ष्मी को धारण करने वाले, ' शान्तदृष्टिः'-
आत्मस्थानतीन प्रशान्त दृष्टिकाले, ' अभिरामनेष्टिनं'-मनोहर
देहाओं वाले, ' शिष्टजन्तुपरिवेष्टिनं'-रिक्ताहितविवेकी-भग्या-
त्माओं में उपायित ' परं'-और अन्धकार से परे-परम उत्कृष्ट
स्वरूपवाले ॥ १ ॥

नष्ट-दुष्टमतिभिर्यमीश्वरं,

संस्मरन्निरिह भूरिभिर्नृभिः ।

क्षीणमोहसमयादनन्तरा,

प्रापि सत्यपरमात्म-रूपता ॥ २ ॥

अनुवादः—' यं ईशं'-और ऐसे जिन ईश्वर को ' संस्म-
रन्निः'-स्मरण करने वाले, ' नष्ट दुष्ट मतिभिः'-नष्ट होगई है
दुष्टमति जिनकी ऐसे ' भूरिभिः'-बहुत से ' नृभिः'-मनुष्यता को
प्राण करने वाले भग्यात्माओं ने ' क्षीणमोहसमयाद् अन्तरा'-
एकात्मिक भाव से गग द्रष्टव्य मोह के क्षीण होजाने पर क्षीणमोह-
नामक बारहवें गुण स्थानक के बाद ' सत्य-परमात्मरूपता'-
पदार्थ परमात्म स्वरूप को ' प्रापि'-पा लिया है ॥ २ ॥

पार्थिवेश-वासुपूज्यवेशमनि,

प्रातपुण्यजनुपं जगत्प्रभुम् ।

वासुपूज्य-परमेष्ठिनं सदा,

के स्मरन्ति नहि तं विपश्चितः ॥ ३ ॥

अनुवादः—‘तं’—उन ‘पार्थिवेश-वासुपूज्यवेशमनि’ राजराजेश्वर श्रीमान्वासुपूज्य महाराजा के घर में ‘प्रातपुण्यजनुपं’—पवित्र जन्म को पानेवाले, और ‘जगत्प्रभुं’—तीन जगत् के नाथ ‘वासुपूज्य-परमेष्ठिनं’—बाहरसे तीर्थकर श्रीवासुपूज्य परमेष्ठि परमेश्वर को ‘के विपश्चितः’—कौन पंडित ‘सदा’—हमेशा ‘नहि’ नहीं ‘स्मरन्ति’—स्मरण करेंगे ? अथितु अवश्य ही स्मरण करेंगे ॥ ३ ॥

भावार्थः—शुद्ध ऋतु की पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की कमनीय कान्ति से विराजित मुखवाले, दिव्य लक्ष्मी को धारण करने वाले, प्रशान्त दृष्टिवाले, मनोहर चेष्टाओं वाले, शिष्टजनों से परिवेष्टित और उन्मृष्ट मूर्त्तियाँ ॥ १ ॥

ऐसे जिन प्रभु का स्मरण करने वाले बहुत से गुणति मनुष्यों ने शीघ्रमोह गुण त्यागकर के बाद यथार्थ रूप से परमात्म अवस्था को प्राप्त की है ॥ २ ॥

उन राजराजेश्वर श्रीवासुपूज्य महाराजा के घरमें पवित्र जन्म लेनेवाले विजयन के मन्त्री श्रीवासुपूज्य परमेश्वर का ध्यान हमेशा कौन करिद्वारा पंडित नहीं करते ? अर्थात् हमेशा करते हैं ॥ ३ ॥

धाम'—सत् और असत् के विवेक रूप ज्ञान के प्रकाश को 'अहं'-
में 'संप्राप्तः'—पा गया हूँ ॥ १ ॥

ये तु स्वामिन् ! कुमतिपिहितस्फारसद्बोधमूढाः,
सौम्याकारां प्रतिकृतिमपि प्रेक्ष्य ते विश्वपूज्याम् ।
द्वेपोद्भूतेः कलुषितमनोवृत्तयः स्युः प्रकामं,
मन्ये तेषां गतशुभदशां का गतिर्भाविनीति ॥ २ ॥

अनुवादः—'स्वामिन्' हे प्रभो ! 'ये'—जो नाम, स्थापन
और द्रव्य निक्षेप का अपलाप करनेवाले 'कुमति-पिहितस्फार-
सद्बोधमूढाः'—दुर्मति से-दर्शनमोहनीय कर्म के आवरण से
उज्ज्वल आत्मबोध के नष्ट प्राय होजाने से मूढ़ता को धारण करने
वाले जिनाज्ञा से बहिर्भूत मतवाले 'ते'—आपकी 'सौम्याकारां'-
राम द्वेप रहित परम शान्त आकारवाली, और 'विश्वपूज्यां'-
तीन लोक के पूजनीय 'प्रतिकृति'—प्रतिमा को 'प्रेक्ष्य'—देख
फाके 'अपि'—भी 'द्वेपोद्भूतेः'—द्वेपोत्पत्ति से 'प्रकामं'—अत्यन्त
'कलुषितमनोवृत्तयः'—दुष्ट चित्तवृत्तिवाले 'स्युः'—होते हैं
'इति मन्ये'—मैं यह सोचता हूँ कि 'तेषां'—उन 'गतशुभदशां'-
विवेक चक्षुके चले जाने से-अज्ञानान्ध पुरुषों की 'का गतिः'—
गति 'भाविनी'—होगी ? अर्थात् किम दुर्गति में वे लगे
? ॥ २ ॥

इयामासूनो ! प्रतिदिनमनुमृत्य विज्ञानियाययं

हे प्रभो ! जो नाम-स्थापना और द्रव्य निक्षेपा का ब्रह्म
लाप करनेवाले, दर्शनमोहनीय कर्म के आवरण से उज्ज्वल आन-
बोध के नष्टप्राय होजाने से मूढ़ता को धारण करनेवाले जिनाङ्गम
बहिर्भूत मतवाले आपकी रागद्वेष रहित परम शान्त आकाशवाली
विश्वपूज्य प्रतिमा के दर्शन करके भी द्वेषके बशीभूत होकर अत्यन्त
दुष्ट मनवाले होजाते हैं । हा इति खेदे ! मैं सोचता हूं उन अज्ञान
से अन्धे पुरुषों की भविष्य में क्या गति होगी ? ॥ २ ॥

श्रीमती श्यामाराणी के पुत्र हे श्रीविमलप्रभो ! हमेशा
विशिष्ट ज्ञानी पुरुषों के अविसंवादी सिद्धान्त वचनों को मुनिकारों
अहित करने वाले मिथ्यात्वियों के वचनों का त्याग कर पूर्णानन्द
से विकसित हृदयवाले जो भव्य प्राणी आपका विधिपूर्वक आराधन
करते हैं । वे महानुभाव ही पशंसनीय आचारवाले, सौभाग्य प्रक-
तिवाले और धन्यवाद के पात्र हैं ॥ ३ ॥

श्रीअनन्तनाथ-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(अग्निर्णी छन्दः)

यस्य भव्यात्मनो दिव्यचेतो गृहे

ॐ सर्वदानन्तचिन्तामणीर्द्योतते । ॥ १ ॥

* सर्वदा-हमेशा, सर्वद-अनन्तचिन्तामणिः-सब प्रकारके
याचिष्ठों को देनेवाले अनन्तनाथरूप चिन्तामणि रत्न । ऐसे 'सर्वदा'
और 'सर्वद' दो प्रकार से पदार्थ होता है ।

निष्कपट भावों से 'धीक्ष्य'—दर्शनकर 'अद्भुतामोदमन्दोः
सम्पूरितः'—अपूर्व हर्ष की अधिकतासे रोमाञ्चित होता हुआ
'आत्मीयनेत्रद्वयं'—अपने दोनों नेत्रों को 'धन्यं'—धन्य-कृतार्थ
'मन्यते'—मानता है ॥ २ ॥

सोऽपवर्गानुगामि स्वभावोज्ज्वलां
व्यूढमिथ्यात्वविद्रावणे तत्पराम् ।
पन्धुरात्मानुभूति-प्रकाशोद्यतां
शुद्धसम्यक्त्वसम्पत्तिमालम्बते ॥ ३ ॥
(युगलम्)

अनुवादः—'सः'—दूमेरे श्लोक वर्णित स्वरूपवाला वही
मध्यात्मा 'अपवर्गानुगामिस्वभावोज्ज्वलां' मोक्ष के अनुकूल
ममार्ग से उज्ज्वल 'व्यूढमिथ्यात्वविद्रावणे तत्पराम्'—चिन्ता
से विनोदतया आत्मगुणोंका घात करनेवाले अतएव भद्धानरूप
मिथ्यात्व को नाश करने में तत्पर, और 'पन्धुरात्मानुभूति-प्रका-
शोद्यतां' मुन्दर आत्मानुभव के प्रकाशसे पूर्ण ऐसी 'शुद्धसम्यक्त्व-
सम्पत्ति'—निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों से निर्दोष भा-
वने लक्ष्यार्थ भद्धानरूप-सम्यक्त्व की सम्पत्ति को 'आलम्बते'—
प्राप्त होता है ।

भाषार्थ—जिम मध्यतीर के अलौकिक मनो मन्दिर में धीरे-
धीरे आत्मार्थ का ध्यान रूप चिन्तामणि रत्न हमें प्राप्त होता है

अनुवादः—‘भास्वज्ज्ञानं’—यज्ञ की दीवारों में भी अस्त-
 लितगति-प्रकाशमान ज्ञानवाले, ‘शुद्धात्मानं’—रागद्वेष से रहित
 अपुनर्भव-शुद्धस्वरूपवाले, ‘धर्मेशानं’—दुर्गति में पड़ते हुए प्राणियों
 को बचानेवाले धर्म के स्वामी, ‘सद्दुष्यानं’—केवल आत्म ध्यान
 को ही करनेवाले, ‘शक्त्यायुक्तं’—अनन्त शक्तिवाले, ‘दोषो-
 न्मुक्तं’—कर्म-क्लेश-विपाकों से मुक्त हुए ‘तत्त्वासक्तं’—अरिहंत
 अवस्था में नवतत्त्वों की और पद् द्रव्यों की प्ररूपणा करनेवाले,
 ‘सद्भक्तं’—मोक्ष के अधिकारी इन्द्र आदि भक्तोंवाले ‘शश्वत्-
 शान्तं’—प्रतिशूल परिस्थिति में भी हमेशा शान्त रहनेवाले, ‘की-
 र्त्त्या कान्तं’—लोक व्यापिनी-विशिष्ट गुणजन्य कीर्ति से कान्त
 स्वरूपवाले ‘ध्यस्तध्यानं’—आत्म फल से और पवित्र उपदेशों से
 मृगशृंगों के अज्ञानान्धकार को नाश करनेवाले ‘विश्रामं’—त्रिवि-
 धतापसंतप्त प्राणियों के आधार भूत ‘क्षिप्तायेष्टं’—दुष्ट अभिनिवेशों
 को कपायों के आयेष्टों को हटानेवाले ‘मत्प्रादेशं’—अविसंगदी
 हितकारी आशाओं को देनेवाले ऐसे ‘श्रीधर्मेशं’—श्रीधर्मनाथ स्वामी
 को हे मय्य प्राणियों ! ‘यन्त्रध्यं’—यन्दन करो ॥ १ ॥

निःशेषार्थप्रादुर्भक्ता सिद्धेर्भक्ता संधर्ता,

दुर्भावानां दूर हर्ता दीनोद्धर्ता संम्मर्ता ।

सद्भक्तेभ्यो मुक्तर्दाना विश्वप्राता निर्माता,

मृत्यो भक्त्या याचोयुक्त्या चतोदृत्याप्येयारमा ॥२॥

‘मोहास्पृष्टः’—जो मोहकर्म से सर्वथा अद्वैत है, ‘स्रोतोप्राप्तः’—जो इन्द्रियों के विषयों से ‘आकृष्टः’—सर्वाधि हुए ‘न’—
 ‘सम्पज्जयेष्टः’—जो तीर्थंकर नाम कर्मकी पुण्य प्रकृति से जो आत्मसम्पत्ति से बड़े चढ़े हैं, ‘साधुश्रेष्ठः’—जो साधुओं में जो हैं, ‘सत्प्रेष्ठः’—जो मज्जनों के अत्यन्त प्यारे हैं, ‘श्रद्धायुक्तस्वान्तः’—जो श्रद्धा सहित मद्भावना से पूर्ण हृदयवाले भव्यात्माओं से सेवित।
 ‘नित्यं-तुष्टः’—जो हमेशा सन्तुष्ट रहते हैं, ‘निर्दुष्टः’—जो दुष्टों से सर्वथा रहित हैं ऐसे ‘नष्टानङ्कः’—भयको नाश करनेवाले ‘श्रीवज्राङ्कः’—वज्रका लंछन धारण करनेवाले श्रीधर्मनाथ स्वामी ‘निश्शङ्कः’—शंका रहितभावसे दृढताके साथ ‘नैव-त्याज्यः’—त्याग करने योग्य नहीं हैं अर्थात् स्वीकार करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—वज्र की दीवारों से भी अस्खलितगति-प्रकाशमान ज्ञानवाले, शुद्धस्वरूपवाले, धर्म के स्वामी, केवल आत्मध्यानको ही करनेवाले, अनन्त शक्तिवाले, कर्मक्लेश विपाकाशयों से मुक्त, तत्त्वों की प्ररूपणा में आसक्त, इन्द्र आदि भक्तोंवाले, हमेशा शान्त रहनेवाले, कीर्ति से कान्त स्वरूपवाले, अज्ञानान्धकार को नाश करनेवाले, आधारभूत, आवेशों को हटानेवाले, हितकारी आज्ञावाले, श्रीधर्मनाथ स्वामी को हे भव्यात्माओं ! वन्दन करो ॥ १ ॥

आत्मा के ममस्त अर्थों को व्यक्त करनेवाले,—सिद्धि के

१, रक्षा करनेवाले, दुर्मायों को मिटानेवाले, दीन प्राणियों के

सूतः' जो देवेन्द्रों से वन्दित हैं, 'लघु विनिर्जित-मोक्ष
धराधिपः'—और जिनने मोहनीयकर्मरूप राजाधिराज को स्रष्टृ
जीत लिया है, वे 'प्रभुशान्तिजिनाधिपः'—सोलहवें तीर्थ
श्रीशान्तिनाथ स्वामी 'जगति'—जगत में 'जयन्ति'—जय
वर्चते हैं ॥ १ ॥

विहितशान्तसुधारसमज्जनं,

निखिल-दुर्जयदोषविवर्जितम् ।

परमपुण्यवतां भजनीयतां,

गतमनन्तगुणैः सहितं सताम् ॥ २ ॥

अनुवादः—'विहितशान्तसुधारसमज्जनं'—अमृत
के जैसे परम शान्त रस में डुबकी लगानेवाले, 'निखिलदुर्जयदोष
विवर्जितं'—दुःखसे जीते जाय ऐसे काम क्रोध आदि सम्पूर्ण
दोषों से रहित, 'परमपुण्यवतां'—उत्कृष्ट पुण्यवाले सज्जनों
के 'भजनीयतां-गतं'—सेवा करने योग्य पद को पाये हुए
'अनन्तगुणैः-सहितं'—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशा-
स्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय नामक द्रव्यों में स्कन्ध और देश
के अविभागीभाग प्रदेश अनन्त होते हैं। उन प्रत्येक प्रदेशों में
अनन्त २ पर्याय अवस्था विशेष होते हैं। उन अनन्त २ पर्यायों
के विशेष धर्म को भगवान् अपने केवल ज्ञानमें और मामान्य धर्म
को केवल दर्शन में जानते हैं। इस लिये केवल ज्ञान केवल दर्शन

विशुद्ध चेतनावाले हे पारगत ! 'चारु-चारित्र-पवित्रिन-लोक'—
अपने सत्य शिव और सुन्दर चरित्र से लोक को पवित्र बनानेवाले हे
मार्गदर्शक ! 'विशुद्ध !' अपने आप विशिष्ट बोध को पानेवाले
हे स्वयंसंयुद्ध ! 'निरुपम मेरुमही-घर-धीर'—अद्वितीय मेरु पर्वत के
जैसी धीरतावाले हे देवाधिदेव ! 'निरंतरं-एव'—हमेशा 'गर्ववि-
वर्जित-सर्व-सुपर्व-विनिर्मित-सेव !' अभिमान रहित निष्कण्ठ
भाव से सब सुर और असुरों से सेवित हे तीर्थनाथ 'जय जय !'
आपकी जय हो, जय हो ॥ २ ॥

जय जय सूरनरेश्वरनन्दनचन्दनकल्प !,
जिनेश ! विश्वविभाव-विनाशक धीतविकल्प !
निर्मल-केवल-बोधविलोकित-लोकालोक !,
प्रादुर्भूत-महोदय-निवृत्ति-नित्य-विशोक ! ॥ ३ ॥

अनुवादः—'सूरनरेश्वरनन्दन !—चन्दन-कल्प !'
हे छरनामक राजाधिराज के पुत्र रत्न ! त्रिविधताप को मिटाने के
लिये हे चन्दन के समान 'जिनेश !' हे तीर्थनाथ ! 'विश्वविभाव
विनाशक धीतविकल्प !' आत्मा से मित्र संसार के भाषाई
परिणामों का नाश करनेवाले हे कल्पनातीत-अचलस्वरूपवाले नाथ !
'निर्मलकेवल-बोध-विलोकित-लोकालोक !'—प्रकाशमय केवल-
ज्ञान से लोक और अलोक के भाषों को जाननेवाले हे सर्वज्ञ !
'प्रादुर्भूत-महोदय-निवृत्ति-नित्य-विशोक !'—उत्पन्न-पूर्व

श्रीअर-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(रामगिरि-रागः)

दिव्यगुण-धारकं भव्यजनतारकं ॐ,
दुरितमतिवारकं सुकृतिकान्तम् ।
जितविषमसायकं, सर्वसुखदायकं,
जगति जिननायकं परमकान्तम् ॥ १ ॥

अनुवादः—‘अर!’—हे अरनाथ स्वामी ! ‘भव्यजनता’-सुशुभ्र जन समुदाय ‘दिव्यगुणधारकं’ दिव्यगुणों को धारण करनेवाले, ‘भव्यजनतारकं’ भव्यात्माओं को तिरानेवाले, ‘दुरितमतिवारकं’ पाप बुद्धि को हटानेवाले ‘सुकृतिकान्तं’ पुण्यात्माओं के प्यारे, अथवा पुण्यकृतियों से मनोहर स्वरूपवाले ‘जितविषमसायकं’—विषमसायक-कामदेव को जीतनेवाले, ‘सर्वसुखदायकं’ अनन्त सुखों को देनेवाले, ‘जिननायकं’—चर्तार्तास अतिशयादि महाप्रभुतावाले ‘जगति परमशान्तम्’ जगत् में परम शान्त स्वरूपवाले आपको नमस्कार करके ‘कं’ सुख को प्राप्त करने हैं ॥ १ ॥

* काकाक्षिगोलकन्याय से ‘भव्यजनतारकं’ पद एकवार प्रभु के विशेषण रूप से आर दृमरी बार पदच्छेद करने पर कर्ता सम्बोधन और कर्मरूप से भर्ष करना चाहिये । ‘भव्यजनता-अर-कं’ शब्द पदच्छेदः । (अनुवादिका)

शिवमही-सार्वभौमप्रधानम् ॥ दिव्य० ३ ॥

× (त्रिभिधिशेषकम्)

अनुवादः—‘साधुदर्शनघृत्’—यद्यत्र दर्शनशाले ‘भाषि-
कः’—भग्यात्माओं से स्तुति किये हुए ‘मातिहार्याष्टकोद्भासमाने’
आठ महाभातिहार्यों से विराजमान ‘सततनुक्तिप्रदं’—नित्य
मुक्ति को देनेवाले ‘सर्वदा’—हमेशा ‘पूजितं’—स्वामारिक पूत
अस्थायाले ‘शिवमहीसार्वभौमप्रधानं’—कल्याण भूर्मी के
गर्भ श्रेष्ठ गार्वभौम-मग्नार्-यकनति और तीर्थंकर पद को पानेने
ऐसे ‘अरकं’—अटगह्वे तीर्थंकर श्री अरनाथ भगवान् को ‘नौदि’-
नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे अरनाथ भगवन ! मुमुक्षु जनममुदाय दिव्य
गुण को धारण करनेवाले, मय्यजनों को निगनेवाले, पाप बुद्धि को
हटानेवाले, पुण्यात्माओं के प्यारे-पुण्य प्रकृति में सुन्दर स्वरूपाने,
कामदेवकी जीतनेवाले, मय्य गुणों को देनेवाले, महाप्रभुताने
और अगत में परमशान्त स्वर्णराने आपको नमस्कार करके गुणों
प्राप्त करने हूँ ॥ १ ॥

ओ आत्मा के ज्ञानादि गुणों में और उनके अनन्त अणु
अणु आदि पर्यायों में एकत्र होनेवाले हैं, गूढलादि पर दृष्टी के
वर्गित में रहित स्वभाववाले हैं, एक अनादिगुण वरदाने हैं, वा

× यह पद्य और अष्टादश पदों में लिखा जाय तो यहाँ भी
बहुतेरे हैं ‘नौदि’ । इस लिये इसकी विशेषज्ञता है ।

प्रकाशपूर्ण * ज्ञान वाले हे सर्वत्र ! ' निजविक्रमजिनमोहमहो-
द्भटभूपते ! '—दूरे के बल की पर्या न कर अपने ही बल पौरुष से उच्च
खल ऐसे मोहगजाको जीतनेवाले हे वीतराग ! ' श्रीपद्मानु-
जान ! '—श्रीसुमित्रमहाराजा की पट्टराणी श्रीमती पद्मादेवी के पुत्र
रत्न हे शंभो ! ' सुजानहरिदृष्टुने ! '—मनोहर हरित कान्ति को
धारण करनेवाले हे पुरुषोत्तम ! ॥ १ ॥

श्रीमुनिसुव्रतसुव्रतदेशक ! सज्जनाः,
कृतसद्गुरुशुभवाक्य—सुधारसमज्जनाः ।
ये प्रणमन्ति भवन्तमनन्तसुखाश्रितं
केवलमुज्ज्वलभावमखण्डमनिन्दितम् ॥ २ ॥

अनुवादः—' सुव्रतदेशक ! श्रीमुनिसुव्रत ! '—अहिंसा-
सत्य-अचौर्य ब्रह्मचर्य-अममत्व आदि सदाचारों का उपदेश देनेवाले
हे श्रीमुनिसुव्रतप्रभो ! ' कृतसद्गुरुशुभवाक्यसुधारसमज्जनाः '—
सद्गुरुओं के पवित्र उपदेशरूप अमृत में स्नान करनेवाले ' ये '—
जो ' सज्जनाः '—सज्जन ' अनन्तसुखाश्रितं '—अनन्तसुखवाले
'—अद्वितीय निर्द्वन्द्वभाववाले ' उज्ज्वलभावं '—निर्मलपरि-

* यहाँ 'विलम्बमनि'—का अर्थ विजिष्ट ज्ञान करना ही उचित
क्योंकि क्षायिक भाव में केवलज्ञान के होने पर दूरे छायास्थित
ज्ञान रहते ही नहीं, जैसे कि सूर्य के प्रकाश में अन्य वस्तुओं का प्रकाश
होता ही नहीं । कर्मसंग्रहजि ।

मुग्रत-मदाचारों का उपदेश देनेवाले हे श्रीमुनिमुग्रतप्रभो !
सद्गुरुओं के पवित्र उपदेशामृत में मज्जन करनेवाले जो मज्जन
अनन्त मुखवाले अद्वितीय स्वभाववाले निर्मल परिणामवाले अखण्ड
स्वरूपवाले अकुत्सित जीवनवाले आपको श्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

वे भव्य-भक्त लोग निस्सन्देह तीनों जगतसे सादर वन्दित
और आनन्दित होते हैं । 'जैसा कार्य होनेवाला होता है—वैसे ही
स्वरूपाविरोधी असाधारण कारण भी पैदा हो जाते हैं' यह प्राकृतिक
नियम है । ॥ ३ ॥

श्रीनमि-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(पञ्चचामर-छन्दः)

नमीश ! निर्मलात्मरूप ! सत्यरूप ! शाश्वतं,
परोर्ध्वसिद्धिसौधमूर्ध्नि सत्स्वभावतः स्थितम् ।

विधाय मानसाद्वजकोश-देश-मध्यवर्तिनं,

स्मरामि सर्वदा भवन्तमेव सर्वदर्शिनम् ॥ १ ॥

अनुवाद.—'निर्मलात्मरूप !'—हे पवित्र आत्मस्वभाववाले,

'सत्यरूप'—हे सचे स्वरूपवाले स्वामी ! 'नमीश !'—परीप-

को नमानेवाले अथवा भगवान के गर्भ में आने पर पर-

ओंने नमन किया था ऐसे गुणवाले हे नमिनाथ प्रभो !

अविनाशी, 'परोर्ध्वसिद्धिसौधमूर्ध्नि सत्स्वभावनः

सुव्रत-मदाचारों का उपदेश देनेवाले हैं श्रीमुनिगुवनप्रभों! सद्गुरुओं के पवित्र उपदेशामृत में मजन करनेवाले जो सज्जन अनन्त सुखवाले अद्वितीय स्वभाववाले निर्मल परिणामवाले अक्षुण्ण स्वरूपवाले अकुम्भित जीवनवाले आपको प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

वे भव्य-भक्त लोग निस्मन्देह तीनों जगत्से सादर वन्दित और आनन्दित होते हैं। 'जैसा कार्य होनेवाला होता है—वैसे ही स्वरूपाविरोधी असाधारण कारण भी पैदा हो जाते हैं' यह प्राकृतिक नियम है ॥ ३ ॥

श्रीनमि-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(पञ्चचानर-छन्दः)

नर्माश ! निर्मलात्मरूप ! सत्यरूप ! शाश्वतं,
परोर्ध्वसिद्धिसौधमूर्ध्नि सत्स्वभावतः स्थितम् ।

विधाय मानसाब्जकोश-देश मध्यवर्तिनं,
स्मरामि सर्वदा भवन्तमेव सर्वदर्शिनम् ॥ १ ॥

अनुवाद.—'निर्मलात्मरूप!'—हे पवित्र आत्मस्वभाववाले विभो! 'सत्यरूप'—हे सच्चे स्वरूपवाले म्यामी! 'नर्माश!'—परीषद्-दुष्मन्तों को नमानेवाले अथवा भगवान् के गर्भ में आने पर पा-गजाओंने नमन किया था ऐसे गुणवाले हे नमिनाथ प्रभो! '—अविनाशी, 'परोर्ध्वसिद्धिसौधमूर्ध्नि सत्स्वभावतः

कहे के दण्डके के प्रीतिपति कहे के मंदिर बसाय बनातुं ॥ १ ॥

दिवसिनी जीतबयल के बसनीय गीतनवाले हे बंधु !
 मंदिरके के अंगन नवीनवाले आपके दिव्य दर्शन में मिथ्या-
 कर्माणि बसाय-योग आदि प्रमादों को बहनेवाली और हीमांग
 कर्माणि अनाथ दृष्टिनि रूप मेरी दुर्दृष्टि गरी के अंगे मरुपट नर
 गंगा, और गंगा हृदय बसाय की आज मिल गया ॥ २ ॥

हे ममिनाथ भगवतु ! भरोबर में मैं हिमा आदि दोषों से
 दूर और अन्य माय के भयंकर बटों को पैदा करनेवाले मायावी
 देवताओं के भयंकर-परिचय का निगूँहा करनेवाला और पुराने
 रूप में आपके ही वापसवतों की सेवा करनेवाला बना रहूं । यह
 मेरी मनोवाछना आपके प्रमादों तन्वात ही मफल हो ॥ ३ ॥

श्रीनेमि-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(उपशान्ति कृतम्)

विशुद्ध-विज्ञानभूतां वरेण
 दिवात्मजेन प्रशमाकरेण ।
 येन प्रयासेन विनैव कामं
 विजित्य विक्रान्तनरं -

‘प्रणाश-गता’-नष्ट हो गई। और ‘हृन्कजे’-हृदय कम्पन।
 ‘विनिद्रता’-प्रफुल्लता ‘अभवत्’-पैदा हो गई ॥ २ ॥

निरस्तदोषदुष्टकष्टकार्यमर्त्यसंस्तवो,—
 भवे भवे भवत्पदाम्बुजैकसेवकः प्रभो ! ।
 भवेयमीदृशं भृशं मदीयचित्तचिन्तितं,
 तव प्रसादतो भवत्ववन्धमेव सत्वरम् ॥ ३ ॥

अनुवादः—‘प्रभो !’-हे नमिनाथ प्रभो ! ‘निरस्तदोष-
 दुष्टकष्टकार्यमर्त्यसंस्तवः’-हिंसा-आदि दोषों से दुष्ट और जन्म-
 मरण के कष्टों को पैदा करनेवाले-मायावी देवताओं के परिचय-
 तिरस्कार करनेवाला और ‘भृशं’-एकान्त रूपसे ‘भवत्पदाम्बु-
 जैक सेवकः’-आपके चरण कमलों की ही सेवा करनेवाला ‘भवे
 भवे’-भव २ में ‘भवेयं’-मैं होऊँ । ‘ईदृशं’-ऐसी ‘मदीय-
 चित्तचिन्तितं’-मेरे हृदय की इच्छा ‘तव’-आपकी ‘प्रसादतः’-
 महिम्नानी से ‘सन्वरं’-तत्काल ‘एव’-ही ‘अवन्धं’-सम्पन्न
 ‘भवतु’-हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे पवित्र आत्म स्वभाववाले विभो ! हे सबे सब-
 वाले स्वामी ! परीपहादि दुश्मनों को नमानेवाले हे नमिनाथ प्रभो !
 मादि अनन्त काल तक परमोच्च मुक्ति मन्दिर में निरञ्जन निराकार
 अजरामर आदि भक्त्यभावों में स्थित होनेवाले और लोकालोक-
 भावों को यथावस्थित रूपसे देखनेवाले आपको हृदय कम्पन की

ह. 'गिरिनामदीर्घः'—गौगद् (काटीयासार) देश में आये हुए
 किंवा पर्वत पर 'गङ्गा'—सागर 'बे.बल-मुक्तिपुत्रः'—कैवल्य
 लब्धपात्रक और निराणं वल्लभाणक से युक्त 'धर्म'—सा महाव्रत
 लब्ध लक्ष्मी वल्लभाणक को 'भेजे'—प्राप्त किया ॥ २ ॥

निःशेषयोगीश्वरमौलिरक्षं

जिनेन्द्रियस्य विहितप्रयत्नम् ।

तमुत्तमानन्द-निधानमेकं

नमामि नेमिं विलम्बद्विवेकम् ॥३॥

अनुवादः—'ने'—उन 'निःशेष-योगीश्वर-मौलिरक्षं'—

सर्वविघ्न-शून्य-अशेष-अक्षय्य और अकिंचनता रूप यम, शेष-
 यन्त्रोप-व्याख्याय-तप और वीतगगप्रणिधान रूप नियम, पश्यामन-
 आदि आमुनों को करने रूप कण, शमोत्प्लवाम को शोकने रूप
 प्राप्तायाम, रूपादिनेम विषयों में इन्द्रियोंका संहरण रूप प्रत्याहार,
 किर्ती ध्येय विषय में चित्तकी स्थिरता रूप धारणा, इष्टदेव के विषय
 में एक धारा चित्तप्रवृत्ति रूप ध्यान, और ध्येयकार निराममन रूप
 गप्ताधि, ये योग के आठ अंगों की माधना करनेवाले समस्त योगी-
 न्द्रों में वृद्धापणि के जैसे 'जिनेन्द्रियस्य'—इन्द्रियों को जीतने में
 'विहितप्रयत्नं'—यमपुरुषार्थ को करनेवाले 'उत्तमानन्दनिधानं'—
 सर्वोत्कृष्ट आनन्द के भण्डार 'एकं'—इन्द्रादीन् समवाहवाले 'विल-
 म्बद्विवेकं'—प्रमृदुद्विवेकवाले 'नेमि'—बाईसवें श्रीनिमिनाथ भगवान्
 को 'नमामि'—प्रणाम करता हूँ ।

‘गिरनारक्षेत्रं’-गौगए (फाटीयावाड) देश में आये हुए
नार पर्वत पर ‘गस्या’-जाकर ‘कषाए-मुक्तियुक्तं’-कवल
न कल्याणक और निवारण कल्याणक से युक्त ‘धनं’-चार महाप्रव
ण रूप-दीक्षा कल्याणक को ‘भेजे’-प्राप्त किया ॥ २ ॥

निःशेषयोगीश्वरमौलिरत्नं

जितेन्द्रियत्वे विहितप्रयत्नम् ।

तमुत्तमानन्द-निधानमेकं

नमामि नेमिं विलसद्विवेकम् ॥२॥

अनुवादः—‘नं’-उन ‘निःशेष-योगीश्वर-मौलिरत्नं’-
हिमा-गन्ध-अग्नेय-मन्त्रार्थ और अकिंपनता रूप यम, धीष-
ज्ज्ञोप-व्याध्याय-नप और धीतगगप्रणिधान रूप नियम, पद्मासन-
आदि आगनों को करने रूप करण, योगोच्छ्वास को रोकने रूप
प्राणायाम, रूपादि तैल्य विषयों में इन्द्रियों का संग्रहण रूप प्रत्याहार,
सिर्गी ध्येय विषय में चित्त की स्थिरता रूप ध्याना, इष्टदेव के विषय
में एक धारा चित्तप्रवृत्ति रूप ध्यान, और ध्येयाकार निर्माण रूप
गमाधि, ये योग के आठ अंगों की साधना करनेवाले गमात योगी-
ज्नों में गृहामणि के जेजे ‘जितेन्द्रियत्वं’-इन्द्रियों को जीतने में
‘विहितप्रयत्नं’-यमपुरुषार्थ को करनेवाले ‘उत्तमानन्द-निधानं’-
गर्वोच्छ्वाह आनन्द के भण्डार ‘नमं’-इन्द्रातीत समायवाले ‘विल-
सद्विवेकं’-प्रसन्नदिवेकवाले ‘नेमिं’-बाह्य एवं धीनेमिनाय मगवा
को ‘नमामि’-प्रणाम करता हूँ ।

अनुवादः—‘विशुद्ध-विज्ञानभृतां चरेण’—धर्मोपदेश की विशुद्धिवाले विशिष्ट-मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान-मनःपर्यव ज्ञानवाले ज्ञानियों में क्षायिकभाव जन्य केवलज्ञानसे प्रधान-अथवा सामान्य केवलियों में तीर्थंकर नाम जन्य पुण्यं प्रकृति से प्रधानता-वाले ‘प्रशमाकरेण’—परम ज्ञान्ति के भण्डार ऐसे ‘येन’—जिन ‘शिवात्मजेन’—यादवों के प्रधान समुद्रविजय महाराजा की पट्टगर्णी श्रीमती शिवादेवी के पुत्ररत्न श्रीनेमिनाथ भगवान् ने ‘विक्रान्तनरं’—मनुष्यों को और उपलक्षण से देवताओं को भी मान करनेवाले ‘कामं’—शब्द-रूप-रस-गन्ध और स्पर्श गुणवाले कामदेवको ‘प्रयामेन विना गन्ध’—विना प्रयत्न के ही ‘प्रकामं’—मय प्रकार से-आन्यन्तिक भाव से ‘विजित्य’—जीत कर ॥ १ ॥

विहाय राज्यं चपल-स्वभावं,

राजीमर्त्ता राजकुमारिकां च ।

गन्धा मल्लालं गिरनारशैलं,

भेजे व्रतं केवलमुक्तियुक्तम् ॥ २ ॥

अनुवादः—‘चपलस्य भावं’—नरक परिणामवाले राज्य की ‘च’—और भोगकर्म के अभाव में ‘राजकुमारिकां’—धीउग्रसेन राजा की पुत्री राजकुमारी ‘राजीमर्त्ता’—पूर्व के आठ भयों से स्नेह मय विधवा-मुन्दर मरुपवाली श्रीमती मर्ती राजीमर्त्ता को गमाई गमन होवाने के पर भी ‘विहाय’—त्याग कर ‘मर्तीम्’—आनन्द का

जगत्प्रकाम-कामिनप्रदानदक्षमक्षनं,

पदं दधानमुद्यकैरकैतयोपलक्षितम् ॥ १ ॥

अनुवादः—‘प्रमादपरिजितं’—ज्ञानावरणीय दर्शनवरणीय
 शरीर और अन्तराय ये चार प्रकारके आत्मगुणपाती कर्म,
 री बेदर्नीय-आयुष्य नाम और गोत्र ये चार अघाती कर्म इन
 पाँच-अपाती रूप आठों कर्मों के विपाक से पैदा होनेवाली अवस्था
 ज्ञेय-प्रमाद से रहित, ‘हृषीकेशाग्रिग्लामनः’—अपने पैंतीस
 शक्तिप्रवचन से ‘जिनोग्रमेघपरिजितं’—बड़े भारी मेघों के
 शीतल को जीतनेवाले ‘जगत्प्रकाम कामिनप्रदानदक्षं’—जगत्-
 पाली जीवों के अत्यन्त प्रिय इच्छितों को देने में दक्षतावाले
 ब्रह्मः अक्षनं पदं दधानं’—उंचे लोकाग्र भाग में स्थित
 नीच सात योजन प्रमाण विस्तारवाली एकटिकरत्नमयी शाश्वती
 शिला पर मादि अनन्तकालतक अविनाशी पदको धारण करने
 वाला ‘अकैतयोपलक्षितं’ अवतार ग्रहणरूप माया से रहित ऐसे
 ‘उन’ ‘जिन’ रागद्वेष को जीतनेवाले श्रीशम्भनाथ स्वामीका
 शक्ति—आनन्द के साथ ‘सदा’—हमेशा ‘अपामि’—धारण
 ॥ १ ॥

सतामवयवभेदकं प्रभूतसम्पदां पदं,

घलक्ष-पक्षसङ्गतं जनेक्षण-क्षणप्रदम् ।

जगत्प्रकाम-कामिनप्रदानदक्षमक्षतं,

पदे दधानमुद्यकैरेकतयोपलक्षितम् ॥ १ ॥

अनुवादः—‘प्रमादयजिनं’—ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय
निर्दीप और अन्तराय ये चार प्रकारके आत्मगुणयात्री कर्म,
‘र’ बेदर्नीय-आयुष्य नाश और शोष ये चार अघाती कर्म इन
चारों-प्रघातों रूप आठों कर्मों के विषाक्त से पैदा होनेवाली अवस्था
निर्देश-प्रमाद से रहित, ‘स्थकीयवाग्विह्वलामनः’—अपने पैंतीस
गुणविशिष्ट प्रवचन से ‘जितोरुमेघगर्जिनं’—बड़े भारी मेघों के
परांर को जीतनेवाले ‘जगत्प्रकाम कामिन प्रदानदक्षं’—जगत्-
मिरासी जीवों के अत्यन्त प्रिय इच्छितों को देने में दक्षतावाले
‘उद्यकैः अक्षतं पदं दधानं’—उंचे लोहाय भाग में स्थित
पैतालीस लाख योजन प्रमाण विस्तारवाली स्फटिकरत्नमयी शाल्वती
किदरिला पर सादि अनन्तकालतक अविनाशी पदको धारण करने
वाले ‘अरेकतयोपलक्षितं’ अवतार ग्रहणरूप माया से रहित ऐसे
‘तं’—उन ‘जिनं’ रागद्वेष को जीतनेवाले श्रीवासनाय सामीका
‘मुद्रा’—आनन्द के साथ ‘सदा’—हमेशा ‘अपामि’—उरण
वा है।

सत्तामययभेदकं प्रभूतसम्पदां पदे,

वलक्ष-पक्षसङ्गतं जनेक्षण-क्षणप्रदम् ।

मः' उनके बाद प्रपञ्चः 'सुखितामिनः' माया के बन्धनों
 रोड़ कर संसार के मयोंममग-मुक्त प्रदेश में गमन करनेवाले
 'प्रभाप्रभास्वराः' मन्विद् ज्योतिसे प्रकाशमान-लोका
 के स्वामी होजाने हैं। 'सत्पदं' तीनों काल में अपनी सत्ता
 बननेवाले 'शुद्ध-बोध-वृद्धिदात्रं' पवित्र आत्म बोध की
 अनन्त वृद्धिस्वरूपलाम को देनेवाले 'तं' उन 'आश्वसेनि-देवदेव'—
 स्वामी के अधिपति श्रीअश्वसेन महाराजा के पुत्रल देवाधिदेव
 श्रीपार्थनाथ स्वामी को 'उद्यमानमेन' बढते हुए चित्तके परि
 पाषों से 'भजेयं'—मं भजता हूँ ॥ ३ ॥

मायार्थ—पार्टी आपाठी स्वरूपवाले आठ कर्मों के विपाक
 से पैदा होनेवाले विचारों से गहित स्वभाववाले, पंतीग गुणों से
 रिजिष्ट अनिष्टयवाले प्रवचन से पड़े मारी मेघों के गर्जारवों को
 जीतनेवाले, जगलवासी-जीवों के अत्यन्त प्रिय-इच्छितों को पूर्ण
 करने में पाण्डित्यवाले, श्राव्यती-मिद्धशिला पर गादि अनन्त काल
 तक अविनाशी पदवाले, अवतार ग्रहणरूप मायासे गहित उन धीत-
 रागी श्रीपार्थनाथ स्वामी का मैं आनन्द के गाय हमेशा शरण
 लेता हूँ ॥ १ ॥

मार्गानुसारि मजनों के पाप का नाशक, अनन्त सम्पत्तियों
 का स्थान, ज्ञानादि गुणों की फला वृद्धि हेतु-शुद्ध पक्ष के समान
 भव्यात्माओं के नेत्रों को आनन्द देनेवाला जिनका दिव्य-दर्श
 पाषों का मर्दन करनेवाले देव-गुरु भक्ति कारक भद्रा सम्पन्न मनुज

रश 'बोपपगुणवारीधिः'—ज्ञानादि प्रधान गुणों के समुद्र
 समनिबुनः'—उत्कृष्टमुक्त स्वरूपवाले, 'मर्षदः'—सब प्रकार
 शिष्टों को देनेवाले 'समस्तकर्मशान्तिधिः'—सम्पूर्ण आत्म
 कर्मियों के मण्डार 'सुर-नरेन्द्रकोटिभितः'—करोड़ों देवताओं
 के और मनुष्यों के स्वामियों से आसेवित 'जनातिसुखदायकः'—
 कल्याणियों को अत्यन्त सुख देनेवाले 'विगतकर्मधारः'—नष्ट
 शेषों हैं कर्म समुदाय जिनके ऐसे 'जिनः'—रागद्वेष को जीतने-
 ले 'समुक्तजनमङ्गलः'—भली प्रकार से छोड़ दिया है संसारी
 नों का संबंध जिनने ऐसे 'त्वं'—आप 'असि'—हैं ॥ १ ॥

जिनेन्द्र ! भवतोऽद्भुतं मुखमुदारविम्बस्थितं,

विकारपरिवर्जितं परमशान्तमुद्राङ्कितम् ।

निरीक्ष्य मुदितेक्षणः क्षणमितांश्चिन्म यद्भावनां,

जिनेश ! जगदीश्वरोऽभवतु मे सर्वदा ॥ २ ॥

अनुवादः—'जिनेन्द्र'—तीर्थंकर नाम कर्म की पुण्य
 से विराजित हुए हैं तीर्थनाथ ! 'अद्भुतं'—अनिर्वचनीय

वाला 'उदारविम्बस्थितं'—प्रसन्न कान्तिमान् 'विकारपरि-
 तं'—कामद्वेषाओं से मुक्त 'परमशान्तमुद्राङ्कितं'—महोन्नत

वन्द्य मुद्रा से विराजित 'भवतः'—आपके 'मुख'—मुखकमल का
 'निरीक्ष्य'—दर्शन करके 'मुदितेक्षणः'—प्रमद लोचनवाला मैं
 'क्षणं'—क्षणमात्र के लिये 'यद्भावनां'—अपने अर्पण भावना

के दुःख समूह को हमेशा के लिये नाश कर देता है ॥ २ ॥

जिन की महिरबानी प्राप्त करके भव्यजन संसार की बड़ी र
समृद्धियों को भोगनेवाले होते हैं और क्रमशः माया के बन्धनों को
तोड़ कर मोक्ष में गमन करनेवाले और सच्चिन् ज्योति से प्रकाश
मान होजाते हैं । तीनों काल में अपनी सत्ता को रखनेवाले, शुद्ध
बोध की अनन्त वृद्धि स्वरूप लाभ को देनेवाले, उन अक्षय
महाराजा के पुत्ररत्न देवाधिदेव श्रीपार्श्वनाथ स्वामी को मैं बढते
हुए शुभ परिणामों से मजता हूँ ॥ ३ ॥

श्रीमहावीर-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(पृथ्वी छन्दः)

वरेण्यगुणवारिधिः परमनिवृतः सर्वदः—

समस्तकमलानिधिः सुरनरेन्द्रकोटिश्रितः ।

जनातिसुखदायको विगतकर्मवारो जिनः

सुमुक्तजनसङ्गमस्त्वमसि वर्द्धमानप्रभो ! ॥ १ ॥

अनुवादः—‘वर्द्धमानप्रभो !’—क्षत्रिय कुण्डनगराधिपति
सिद्धार्थ महाराजा की राज्य समृद्धि को बढानेवाले विशाला महाराजी
के पुत्ररत्न गुणनिष्पन्न श्रीवर्द्धमान नामवाले हे प्रभो ! * ‘सर्वदः’

*—‘सर्वदः’ पद से ‘सर्वदः’ पद ठीक अँचता है । यहाँ शब्दों
के संगत अर्थ कर दिया है । विद्वान् विचारें । (अनुवादिका)

पेश 'बोपयगुगवारिधिः'—ज्ञानादि प्रधान गुणों के समुद्र
 'परमनिबुनः'—उत्कृष्टमुक्त स्वरूपवाले, 'मर्वदः'—सब प्रकार
 के शक्तिों को देनेवाले 'समस्तकमलानिधिः'—सम्पूर्ण आत्म
 वृत्तियों के भण्डार 'सुर-नरेंद्रकोटिधितः'—सरोइों देवताओं
 के और मनुष्यों के स्वामियों से आसेवित 'जनातिसुखदायकः'—
 वृष्णा-मात्रों को अत्यन्त सुख देनेवाले 'विगतकर्मधारः'—नष्ट
 रोगपा है कर्म समुदाय जिनके ऐसे 'जिनः'—रागद्वेष को जीतने-
 वाले 'सुमुक्तजनमङ्गलः'—भली प्रकार से छोड़ दिया है संगारी
 जनों का संबंध जिनने ऐसे 'त्वं'—आप 'अमि'—हैं ॥ १ ॥

जिनेन्द्र ! भवतोऽद्भुतं मुखमुदारविम्बस्थितं,
 विकारपरिवर्जितं परमशान्तमुद्राङ्कितम् ।

निरीक्ष्य मुदितेक्षणः क्षणमितांऽस्मि यन्नावनां,
 जिनेश ! जगदीश्वरोऽयमु मे सर्वदा ॥ २ ॥

अनुवादः—'जिनेन्द्र'—तीर्थंकर नाम कर्म की दुष्प

मार्ति से विराजित हुए हैं तीर्थनाथ ! 'अद्भुतं'—अनिर्वचनीय
 स्वरूपवाला 'उदारविम्बस्थितं'—प्रशस्त कान्तिमान् 'विकारपरि-
 वर्जितं'—व्यापवेदाओं से मुक्त 'परमशान्तमुद्राङ्कितं'—गर्भोन्म-
 पान्मुद्रा से विराजित 'भवतः'—आपके 'मुख'—मुखवदन्त
 'निरीक्ष्य'—दर्शन करके 'मुदितेक्षणः'—प्रमत्त हो बनवाला
 'क्षणं'—क्षणपाव के तारे 'यद्भावना'—वित्त अर्थ

‘बोण्णगुगवारिधिः’—ज्ञानादि प्रधान गुणों के समुद्र
 समन्वितः—उत्कृष्टमुक्त स्वरूपवाले, ‘मर्वशः’—सब प्रकार
 शक्तिों को देनेवाले ‘समस्तकमदानिधिः’—सम्पूर्ण आत्म
 कृपाओं के भण्डार ‘सुर-नरेन्द्रकोटिभितः’—कोटों देवताओं
 के और पुण्यों के स्वामियों से आसेवित ‘जनातिसुखदायकः’—
 कृपा-मात्रों को अत्यन्त सुख देनेवाले ‘विगतकर्मवारः’—नष्ट
 हो गया है कर्म समुदाय जिनके ऐसे ‘जिनः’—रागद्वेष को जीतने-
 ने ‘समुक्तजनमङ्गलः’—भली प्रकार से छोड़ दिया है संसारी
 ों का संबंध जिनने ऐसे ‘त्वं’—आप ‘असि’—हैं ॥ १ ॥

जिनेन्द्र! भवतोऽद्भुतं मुखमुदारविम्बस्थितं,
 विकारपरिवर्जितं परमशान्तमुद्राङ्कितम् ।
 निरीक्ष्य मुदितेक्षणः क्षणमितांऽहिम यन्मावनां,
 जिनेश! जगदीश्वरोऽभवतु मे सर्वदा ॥ २ ॥

अनुवादः—‘जिनेन्द्र’—तीर्थंका नाम कर्म की पुण्य
 गति से विराजित हुए हैं तीर्थनाथ! ‘अद्भुतं’—अनिर्वचनीय
 स्वरूपवाला ‘उदारविम्बस्थितं’—प्रशस्त कान्तिपान् ‘विकारपरि-
 वर्जितं’—कायपेदाओं से मुक्त ‘परमशान्तमुद्राङ्कितं’—सर्वोच्च
 शान्त मुद्रा से विराजित ‘भवतु’—आपके ‘मुखं’—मुखकर्म
 ‘निरीक्ष्य’—दर्शन करके ‘मुदितेक्षणः’—प्रमद होकर बाला
 ‘क्षणं’—क्षणपाव के तारे ‘यद्भावना’—विश्व अर्थ का





महा विविध छन्द करे गये हैं । लौकिक छन्दों में गण आठ प्रकार
होते गये हैं ।

म-प-र-म-न-ज-भ-न-मंत्राष्टछन्दस्पष्टा गणान्विषयाः स्युः ।

यमण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, और
गणमंत्रा वाले ये आठ गण छन्दमें तीन २ वर्ण के माने जाते हैं इन
विन्यासना इस प्रकार हैं ।

ॐ सर्वगुरु मः कथितो,

भजसा गुर्वादि मध्यान्ताः ।

छन्दासि नः सर्वलघु—

परता, लघ्वादि मध्यान्ताः ॥

मगण में तीनों वर्ण गुरु होते हैं—५५५—भगण में आदि
र्ण गुरु होता है—५११—जगण में मध्य वर्ण गुरु होता है—१५१—
गणमें अन्त्य वर्ण गुरु होता है—११५—नगण में सब वर्ण लघु
हैं—१११—यगण में आदिवर्ण लघु होता है—१५५—रगण में
अन्त्य वर्ण लघु होता है—५१५—तगण में अन्य वर्ण लघु होता है
—५५१—काव्य की आदि में प्रयोग करनेवाले कविके लिये मगण-
लक्ष्मी को, यगण-वृद्धि को, रगण-मृत्यु को, भगण-प्रयाण को, तगण-
शून्यता को, जगण-रोगों को, भगण-यश को और नगण-मौद को
देता है । प्रस्तुत चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिका का प्रारम्भ मगण में

ॐ छन्दः कीर्तुमे ।



राद के मातृवे-अर्थात् उच्चीसवे वर्ण पर यति-विराम हो । ऐसे चार चारों बाते उस छन्द का 'शार्दूलविक्रीडित' नाम है ।

यवजः	मगणः	जगणः	मगणः	मगणः	तगणः	गुरुः
५.५.५.	१.१.५.	१.५.१.	१.१.५.	५.५.१.	८.५.१.	५.

१-सङ्गच्छता-मतमो-तिनिजं-रघर १२ आञ्जिष्णु-मौलिप्र-भा ७

x x x x x x x x x

१-कल्याणां-कुरव-धनेज-लघटे-१२ सर्वाङ्गि-सम्पद-रम् ७

दीर्घ संयोगपरं तथा मृतं, व्यञ्जनान्त-मृण्मान्तम् ।
सानुस्वारं च गुरुं, कचिद्वसानेऽपि लघ्वन्त्यम् ॥

अर्थ—दीर्घस्वार, संयोग है पर जिसके ऐसा वर्ण, ध्रुत स्वर, अनान्त वर्ण, विसर्जनीय-जिह्वामूलीय आदि उष्मान्त वर्ण, स्वार वाला स्वर, ये सब वर्ण गुरु कहे जाते हैं । कहीं २ अन्त आया हुआ लघु अक्षर भी गुरु माना जाता है ।

---●-(●)-●---

द्वितीय-श्रीअजित-जिन-चैत्यवन्दने

(मालिनी)

सूत्रम्—मालिनी नौ स्पो य् ॥ ७ । १४ ।

वृत्तिः—यस्य चोदे मगणां, मगण-यगणो यगण-अं (१११, १११, ५५, १५५, १५५,) मचति तद्वृत्तं 'मालिनी' नाम । पूर्वैव यतिः—

छन्दः परिवर्तः

वृत्ति-भाष्यन्तौ-इति अनन्तरोक्तौ इन्द्रयजोपेन्द्रयजयोः-पारा
 ६। तौ यदा विकल्पेन यथेष्टं भवतस्तदा उपजातयः प्रन्तार-
 ना चतुर्दश प्रकारा जायन्ते ।

अर्थ-जिम श्लोक में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के कारण
 यथेच्छा से मिथुन किये गये हों, उस समय प्रन्तार रचाना से
 १६ प्रकार के 'उपजाति' छन्द होते हैं। पदान्त में यति होती है
 य चैत्यवन्दन में पहला श्लोक-प्रमा-दूमरा-कीर्ति और तीसरा
 शुद्धि-संज्ञा विशिष्ट उपजाति छन्द है। इन्द्रवज्रा के कारण में
 अन्त्यलघु तगण, मध्य गुरु जगण, और अन्त में दो गुरु आते हैं।
 उपेन्द्रवज्राके कारण में जगण-तगण-जगण और अन्त में दो
 गुरु आते हैं।

(उपेन्द्रयज)			
जगण	तगणः	जगणः	गु०
१. ५. १.	५. १. १.	१. ५. १.	५
विगुञ्ज	विक्रान्त	भृतांश्च	५

(इन्द्रयज)			
तगणः	तगणः	जगणः	गु०
५. ५. १.	५. ५. १.	१. ५. १.	५
वेदप्र	वाह्येव	विदेव	५



S. 1. 1. 1. S. 1. S. S. 1. 1. 1. S. 1. S.
 दिव्यगुणधारकं भव्यजनताटकम्
 1. 1. 1. 1. 1. S. 1. S. 1. 1. 1. S. S.
 उरितमनिवारकं गुरुतकास्तम्

एकोनविंशश्रीमल्लीजिन चैत्यवन्दने

(गीत)

यह गीत भी मायिक-छन्द विशेष ही है इसके पोटले तीसरे
 पाद में चारवीं २ और दूसरे चौथे चरण में शर्मा २ मात्राये होती
 हैं। यति लयानुसार होती है।

S. 1. 1. S. 1. 1. S. 1. S. 1. 1. 1. 1. 1. S.
 कुम्भसमुद्रसंमदाकारगुणधर! हे
 S. 1. 1. S. 1. 1. S. 1. 1. 1. 1. S. 1. 1. S.
 यस्मिन्निमोत्तमदेव! जयजयविभूषते!

विंश श्री मुनिसुव्रतजिन चैत्यवन्दने

(गेयम्)

यह गेय छन्द भी मायिक है। इसके प्रदेव चारवें
 मात्राये होती हैं और यति लयानुसार।

S. 1. S. 1. S. 1. 1. S. 1. 1. S. 1. S.
 उत्तमवन्दनार्थे लघुऽजयत्यन्ते।





नपालीम गणघर सहित, आपो शिवपुर स्वाम ॥ ३ ॥
 चौमठ सहम सुमाधु, च्यार सय बासठ सहस ।
 भमर्णी भायक दोष लाख, ऊपर चौ सहस ॥ ४ ॥
 च्यार लाख तेरे सहस, भायकर्णी सार ।
 किनर कंदर्पागुरी, नित सानिधिकार ॥ ५ ॥
 अद्विष सय परिवारगुण, माम स्वमण तप जान ।
 प्रभु मीषा ममेतगिरि, करो संघ कल्याण ॥ ६ ॥

॥ श्री शांति जिन चैत्यवन्दन ॥

मोलम जिनवर शांतिनाथ, सोवन सम काय ।
 विषसेन अचिरा गुहन, मृग लांछित पाय ॥ १ ॥
 चालीम धनुष प्रमाण, उष जगु देह विराजै ।
 आयु बछर लाख एक, जलघर धुनि गाजै ॥ २ ॥
 छट्ठ भक्त संजम लियोए, इधनापुरवर नाम ।
 निज गणघर छतीम जुत, आपो शिवपुर स्वाम ॥ ३ ॥
 बागठ सहम सुमाधु, छ मय बलि इकसठ सहस ।
 मार्जी भायक दोष लाख, बलि नेउ सहस ॥ ४ ॥
 सहस प्रमाणु तीन लाख, भायकर्णी सार ।
 निर्वाणी गुरी गरुड पक्ष, नित सानिधिकार ॥ ५ ॥
 नव सय मुनि परिवारगुण, माम स्वमण तप जान ।
 प्रभु मीषा ममेत गिरि, करो संघ कल्याण ॥ ६ ॥

छद्म मम संजम लिपोए, हथिणाउरपुर ठाम ।
 निज गणधर तेतीस जुत, आपो शिवपुर स्वाम ॥ ३ ॥
 माधु महम पचास मान, साठ सहस्र भ्रमणी ।
 महम घोरासी एक लाख, भावक गुमतिधणी ॥ ४ ॥
 महम बहुतर तीन लाख, भावकणी मार ।
 धारणिगुरि पक्षेश्वर, नित मानिधिकार ॥ ५ ॥
 एक महम मुनि माधुसुंए, माम रामण तप जाण ।
 प्रभु सीधा ममेत गिरि, फरो रांप कल्याण ॥ ६ ॥

॥ श्री महि जिन चैत्यवन्दन ॥

उगणीमम भी महिनाथ, नील वरण काय ।
 देवी प्रभावती पुंभराय, नंदन जिनराय ॥ १ ॥
 फलम लंडन पणवीग धनुष, तनु उष पिडाण ।
 महम पन्नावन परं मान, जगु आय गुजाण ॥ २ ॥
 अहम भने प्रत लिपोए, नगरी मिथितानाम ।
 गणधर अहावीम जुत, आपो शिवपुर म्याम ॥ ३ ॥
 जगु चालीम हजार माधु, पंचावन महम ।
 माधु भावक एक लाख, त्रयामी महम ॥ ४ ॥
 तीन लाख निजर महम, भावकणी मार ।
 गुर बुद्धे धरणप्रिया, नित मानिधिकार ॥ ५ ॥

अंबादेवि गोमेष मुर, नित सानिधिकार ॥ ५ ॥
 मुनि पणसय छत्तीसमुंण, मासखमण तप जाण ।
 प्रभु सीधा गिरनार गिरि, करो संघ कल्याण ॥ ६ ॥

॥ श्रीपार्श्व जिन चैत्यवन्दन ॥

श्री अश्वसेन नरेश नंद, वामा जमु मात ।
 पद्मगलांछन पार्श्वनाथ, नील वरण गात ॥ १ ॥
 अति मुंदर जिनराज देह, नव हाथ प्रमाण ।
 वरस एक सौ मान आयु, जमु निरमल नाण ॥ २ ॥
 अट्टम तप संजम लियोण, नयरि वणारसि नाम ।
 गणधर दस परिवार युत, आपो शिवपुर स्वाम ॥ ३ ॥
 मोलह महम मुनि जाम मीम, अडतीम महम ।
 श्रमणी श्रावक एक लाख, चौमटि महम ॥ ४ ॥
 त्रिणलख गुणचालिम महम, श्रावकर्णी मार ।
 पार्श्व यक्ष पद्मावती, नित सानिधिकार ॥ ५ ॥
 तेतीम मुनि परिवारमुंण, माम मयण तप जाण ।
 प्रभु सीधा समंत गिरि, करो संघ कल्याण ॥ ६ ॥

॥ श्रीवर्द्धमान जिन चैत्यवन्दन ॥

जय २ श्री जिन रद्धमान मोवन मम शन ।
 लंछन मिट्ठमं, गाय विजय गन मान ॥ १ ॥

वरम घटुत्तर आउ, देह कर मन प्रमाण ।
 रिषभादिक गम जागु वंग, इहाक गुजाण ॥ २ ॥
 छट भन मंजम लियोण, कुंडनापपुर ठाम ।
 गणधर इम्पारे महित, आपो शिवपुर ग्याम ॥ ३ ॥
 चउद महम मुनि म्यामि मीम, छतीग महम्म ।
 भमणी थायक एक लाख, गुण माट महम्म ॥ ४ ॥
 तीन लाख गुश्राविका पलि, महम अदार ।
 गुर मातंग मिढायिका, नित मानिधिकार ॥ ५ ॥
 एकाकी पावापूरीय, छट भन गुह साण ।
 प्रभु पटुता अमृत पदे, यरो मंघ कन्याण ॥ ६ ॥

॥ अथ प्रदास्मि ॥

कपमादिक चौवीम देव, जिनगज प्रधान ।
 मात पिता लाहण वण, धपणादि विधान ॥ १ ॥
 गय अदार छप्पन मर्म, गुदि जेट पिढाण ।
 दक्षिण देह नागपुर, तिथि तेरम जाण ॥ २ ॥
 धोजिनभक्ति पमाणधीन, इम वणप्या गुजाण ।
 कानक अमृत धर्म गणि, मीम क्षमा कन्याण ॥ ३ ॥

इति श्री चतुर्विंशति जिन नमः ॥



परिशिष्ट - - -

॥ अष्टमः ॥

अनेक ग्रन्थनिर्माता-सुविदितशिरोमणि-प्रातःस्पर्णीय-पूज्येश्वर
महामहोपाध्याय श्री श्री १००८ श्रीमन् धर्मरत्नपाण
गणितविता गणित—

जिन-चेत्यवन्दन चतुर्विंशतिका

१—श्रीश्रावभजिन-स्तुतिः ।

(१)

धीमदृषभ ! गर्वित ! दृषभाङ्ग ! सुवर्णेश्व ! ।
जय देवाधिदेवार्त्त ! नाभिगजेन्द्रनन्दन ! ॥

(२)

पूगयादी त्वया येन, ज्ञानदत्त-पुनः यत् ।
जनन्या परदेवाया पावनं अहं वृत्तम् ।

२—श्रीआर्जुनाजन-स्तुतिः ।

(१)

अर्जुनाजितनाथन शत्रुनाशकः शत्रुनाशकः ।
शिवरत्न-परीपाठ-पुण्यं वृत्तम् ॥

५—श्रीसुमतिनाथ-स्तुतिः ।

(१)

मेधामिध-धरिषीश-तनयो मङ्गलप्रदः ।
क्रौञ्चतक्षण-भृदेम,-मरीचिमङ्गलांगवः ॥

(२)

मत्पं सुमति-नाथेशः, सुमतिं तनुतात्तमां ।
मविनां पुण्य-कर्तृणां, स्वर्ग-सौख्यावलिप्रदाम् ॥

६—श्रीपद्मप्रभ-स्तुतिः ।

(१)

मुनीमापुत्र ! सत्कोक-नदद्युतिपरापर ! ।
धरामिधशृङ्गोद्भूत ! पद्मक्ष्मणधारक ! ॥

(२)

मवान्धौ मय संकीर्णै, दुस्तरे पततां नृणां ।
शानाय मततं देव, ! पद्मप्रभ ! जिनेश्वर ! ॥

(८)

७—श्रीसुपार्श्व-स्तुतिः ।

(१)

श्रीगुपार्श्वामिधो देवः, पृथ्वीजः स्वस्तिकाङ्गभृत् ।
प्रतिष्ठ-नृप-संज्ञात-धामीकरकरो दिनः ॥

(२)

समुद्र इव गंभीरः, कर्मणां छेदने परः ।
यः सार्वः परमब्रह्म, स्तं नौमि सदा विभुम् ॥

८—श्रीचन्द्रप्रभ-स्तुतिः ।

(१)

चन्द्रप्रभप्रभो ! कान्त-चन्द्रलक्षण-संपुत ! ।
तमापति-च्छविज्ञान,-तमोव्यूह-विनाशन ! ॥

(२)

संसार-जलधेनीथ ! महसेन-नृपोद्भव ! ।
लक्ष्मणापुत्र ! मां स्वामि-न्नव केवल-बोधभृत् ! ॥

९.—श्रीसुविधिनाथ-स्तुतिः ।

(१)

* संस्तुतो यो ददात्याशु, सुगम-नरेश्वरैः ।
सुविधिर्वाञ्छितं शर्म,- सुग्रीव-नृप-नन्दनः ॥

(२)

यस्यामीजननी गमा माननीया दिवौकमाम् ।
मान-मुक्तोऽवदानो यो-ऽमायो मकर-लालितः ॥

१०—श्रीशीतलनाथ-स्तुतिः ।

(१)

* श्रीमच्छीतलनाथेय ! नन्दाददरथात्मज ! ।
भाम्यन्सुवर्णवदेह ! श्रीयत्याह्लाङ्ग-धातक ! ॥

(२)

त्वदीय-चरणाम्भोज- सेनकानां षष्ठभृताम् ।
प्राक्कृतं वृजिन-प्यूढं, दुष्टं संभिन्दि हे विभो ! ॥

११—श्रीश्रेयांसनाथ-स्तुतिः ।

(१)

विष्णुवंशैर्जयदेवो, विष्णु-पुत्रो हिरण्यभः ।
श्रेयोवृद्धिकरोऽजस्रं, गङ्गिदण्डनभृजिनः ॥

(२)

हत्या कर्मरिपून् मार्ग्यः, श्रेयांसः श्रेयसः गढ ।
* पर ज्ञानमयेन रवं, महानन्द-पदम् ॥

* ये देवा योक्तव्यमव्ययं । * पर ज्ञानं-अप-रम ! इति
तोदे विदिते श्रेयांशो भवति स्वयः ।

१४—श्रीअनन्तनाथ-स्तुतिः ।

(१)

हेमवर्णस्य पुत्रस्य, सुयशः- सिंहमेनयोः ।
देवस्य श्येनचिन्हस्य, पर्यान्त-गुणोदधेः ॥

(२)

इन्द्रादयोऽपि यस्यान्तं, गुणानां लेमिरे नदि ।
अनन्तस्य गुणोस्तस्य, धर्मो पवतु नरः कथम् ॥

१५—श्रीधर्मनाथ-स्तुतिः ।

(१)

सुयता-पुत्र ! यच्चाङ्ग ! भानुवंशार्कतपिभः ।
फलक-प्रभमव्यंश ! धर्मनाथामिषेधः ॥

(-)

तवागोर्नपि पुत्रधारी, भूतले पापशोभता ।
अनुत्तमकलाः मन्ति, मता गगतयो विदि ॥

१६—श्रीशान्तिनाथ-स्तुतिः ।

(१)

विधत्तेन धर्माश्रय-नन्दन दृगलक्ष्मणम् ।
आविरेय सुयसाङ्ग, बलपामि जितेधमम् ।



(२)

प्रवर-चन्द्र-लक्षण-संपुतं, * मुनिपतं गुननं जननायकः ।
नमते शीलनाथमिमं जना, जगति जीवनदानप्रदायणम् ॥

११—श्रीश्रेयांस-स्तुतिः ।

(१)

नमोऽस्तु ब्रह्मरूपाय, सर्वदा सर्व-दर्शिने ।
वीतराग म्बरूपेण, सिद्धावस्थामुपैष्यते ॥

(२)

श्रीमते विष्णु-पुत्राय, विश्वमित्राय शंभवे ।
धेयसे तीर्थनाथाय, परमानन्द-दायिने ॥

१२—श्रीवासुपूज्य-स्तुतिः ।

(१)

पूर्णन्दु-मन्त्रिमं सम्यग्, वीक्ष्य ते मुखमीश्वर ! ।
भजन्ति जन्तुपद्मानि, विकाशमिदमद्भुतम् ॥

(२)

संमारांबुनिधेर्नाथ ! दुस्तरान्मां समुद्धर ।
वसुपूज्यान्मज्ज श्रीमन् ! वासुपूज्य-जिनेश्वर ! ॥

१३—श्रीविमलनाथ-स्तुतिः ।

(१)

विशेष्य शुद्ध बोधेन, कर्म-जाल-मलीषसम् ।
चेतनं पुष्परूपः सन्, प्राप्तवान् विमलामिधाम् ॥

(२)

कृतवर्म-कुलोत्तमः, सर्व-कल्याण-जन्मभूः ।
× भूयात्कल्याणपाप्मात्मा, स श्यामेयो गतिर्मम ॥

१४—श्रीअनन्तनाथ-स्तुतिः ।

(१)

अनन्त-शीर्ष-संपन्न-मनन्त-दान-दर्शनम् ।
अनन्त-पारु-स्वारिध-मनन्त कमलावृतम् ॥

(२)

अनन्त भव्य-संसेव्य-मनन्तं परमेश्वरम् ।
नयामि सर्वदानन्तं, निजानन्तर्द्धि सिद्धये ॥

१५—श्रीधर्मनाथ-स्तुतिः ।

(१)

यमीशं वीर्य दंभोलि-मोह-भूष-अयोधतम् ।
सादारण्यं कर्तुकामो वा, शीभिरे लांठनच्छलात् ॥

× द्वितीय श्लोकोन्तेपादपुगे एवं पुरतटे वुटित नव्ये नि

(३)

गोः के चमेगतिवेगमे, गुणतः गुणतः गुणतः ।
 वा गुणतः गुणतः वा, आश आशीकः पुति ॥

१६—श्रीगान्धिवनाथ-मनुनिः ।

(१)

वचुर्ग वचिर्ग नावः । मयतो मय मेदः कृत् ।
 भूषादेनाति निर्दिष्टे, वचणा वचुषावचः ॥

(२)

ॐ निमित्ताद्यान् निर्मात्रं, गान्धे ! गान्धि निमित्तनमः ।
 देहि मे दर्शनं दिव्यं, मय मयदिवाचकम् ॥

१७—श्रीकृन्धुनाथ-मनुनिः ।

(१)

अशप्य मारंमौमन्वं, मयंमन्वं च यः प्रभुः ।
 वाद्यान्तः-प्रमेदेना व्रिपीतिविध विदिषः ॥

(२)

मोक्ष्य श्रवणः शूरः, प्रभवः प्रभुताम्पदम् ।
 महानन्दप्रदो भूषात्र, कृन्धुनाथो जिनाधिरः ॥

१८—श्रीअरनाथ—स्तुतिः ।

(१)

दित्वा गावय-कर्माणि, जित्वा सर्वेन्द्रियाणि च ।
कृत्वा चित्तं निजापन्नं, भूतश मष्टि-भाजनम् ॥

(२)

अरनाथ-जगत्पार्थ, ये सज्जन्ति शुभार्थिनः ।
शामुवन्ति सुगुणानि, सर्वं सात्त्विकं ते जनाः ॥

१९—धीमहिर्नाथ—स्तुतिः ।

(१)

लाभान-व्यपदेशेन, यं निषेधे जगद्विषय ।
कामदः काम-बुद्ध्योऽपि, मत्वा सर्वार्थं दासकम् ॥

(२)

न धीमहिर्जिनार्थिनः, सुगुणार्थे समर्थिनः
कृपाप्रापणः काम, वादान्ता भवसाविधेः

२०—धीमुद्यतनाथ—स्तुतिः

(१)

वैराग्यममर्षेण, तद्विद्वेज-वत् २२
देहाह्वानं निराकृत्य, समर्थं वो दि नारा

(२)

मोज्यं धर्मपतिर्धम्मः, सुव्रतः सुव्रताङ्गजः ।
पां पुनातु पवित्रात्मा, चारु चामीकर छति ॥

१६—श्रीशान्तिनाथ--स्तुतिः ।

(१)

अद्भुतं चरितं नाथ ! भवतो मय-भेद-कृत् ।
मृगाङ्गेनापि निर्दग्धे, यच्चया कुमुमायुधः ॥

(२)

⊗ निर्मिताशान्त-निर्णाशं, शान्ते ! शान्ति निकेतनम् ।
देहि मे दर्शनं दिव्यं, भव्य-संपद्विधायकम् ॥

१७--श्रीकुन्धुनाथ--स्तुतिः ।

(१)

अवाप्य सार्वभौमत्वं, सर्वत्रत्वं च यः प्रभुः ।
बाह्यान्तर-प्रभेदेना जैषीविविध विद्विषः ॥

(२)

मोज्यं शूरवरः शूरः, प्रभवः प्रभुताम्पदम् ।
महानन्दप्रदो भूषात्, कुन्धुनाथो जिनाधिपः ॥

(२)

मोक्ष्यं घर्मपतिधर्मः, सुव्रतः सुव्रताङ्गनः ।
मां पुनातु पवित्रात्मा, चारु चामीकर-घृति ॥

१६—श्रीशान्तिनाथ--स्तुतिः ।

(१)

अद्भुतं चरितं नाथ ! भवतो भव-भेद-कृत् ।
मृगाङ्गेनापि निर्दग्धे, यत्त्वया कुसुमायुधः ॥

(२)

❀ निर्मिताशान्त-निर्णाशं, शान्ते ! शान्ति निकेतनम् ।
देहि मे दर्शनं दिव्यं, भव्य-संपद्धिघायकम् ॥

१७—श्रीकुन्धुनाथ--स्तुति ।

(१)

अवाप्य मार्गभौमत्वं, सर्वज्ञत्वं च यः प्रभुः ।
वाह्यान्तर-प्रभेदेना-जिपीविविध विट्पिपः ॥

(२)

मोक्ष्यं शरवरः शरः, प्रभवः प्रभुतास्पदम् ।
महानन्दप्रदो भूयात्, कुन्धुनाथो जिनाधिपः ॥

(२)

तदिममसृणीभूतं, चित्तमुत्तुंग भावनम् ।
मां विधेहि गुणाधानं, मुनिसुव्रत ! सुव्रतम् ॥

२१—श्रीनामिनाथ—स्तुतिः ।

(१)

विजयेश्वर- भूमीश, वंशवाद्धिं विवर्द्धनम् ।
शीतच्छायमिवातुच्छ-पङ्क-भूच्छाय-मर्दनम् ॥

(२)

जित्वरं घोरकर्माणि, वरेण्यं पुण्य-दर्शनम् ।
नमीशं जगतामिष्टं, द्रष्टुमिच्छामि सत्वरम् ॥

२२—श्रीनेमिनाथ—स्तुतिः ।

(१)

अपार-महिमांमोधि-ब्रह्मचर्यैक-चेतसा ।
मन्मथो मथितो येन, शिशुत्वेऽपि सुसोचितं ॥

(२)

मोऽयं श्रीनेमि—सर्वज्ञो, हरिवंश-विभूषणः ।
सेव्यतां शिव-संपर्यै, सर्वदा गनदूषणः ॥

२३—श्रीपार्श्वनाथ-स्तुतिः ।

(१)

यस्य पादाम्बुज-स्पर्शा-द्रव्याभूषीर्यमुत्तमम् ।
नामोऽभूत्प्राग-देवेन्द्रो, यदीय-यत्न-श्रुतेः ॥

(२)

नरय देवाधिदेवस्य, पार्श्वनाथजिनेन्द्रितु ।
पार्ष्णं सर्वं मौक्तिकानां, पार्ष्णं दारुणं मय ॥

२४—श्रीवीर जिन-स्तुतिः ।

(१)

विश्वलोक मनोहारि-प्रातिहार्यं विराजितः ।
प्रतीक्ष्यः परमैश्वर्यं भुक्ता भृशवदम्बकैः ॥

(२)

वर्द्धमानो विदुर्दधीः, समामभोऽपकारकः ।
विश्वक-भाजनं सन्धि, करोतु ज्ञाननन्दनः ॥

(३)

इत्ये शत्रुर्विद्वान्-तीर्थपातां, सुबोधव्योदितः ।
जिनं पर्वताश्रितधर्मं शोवि शमादि-कल्प्यात् दिग्गजेन्द्र ।



